अमृतवचनावली

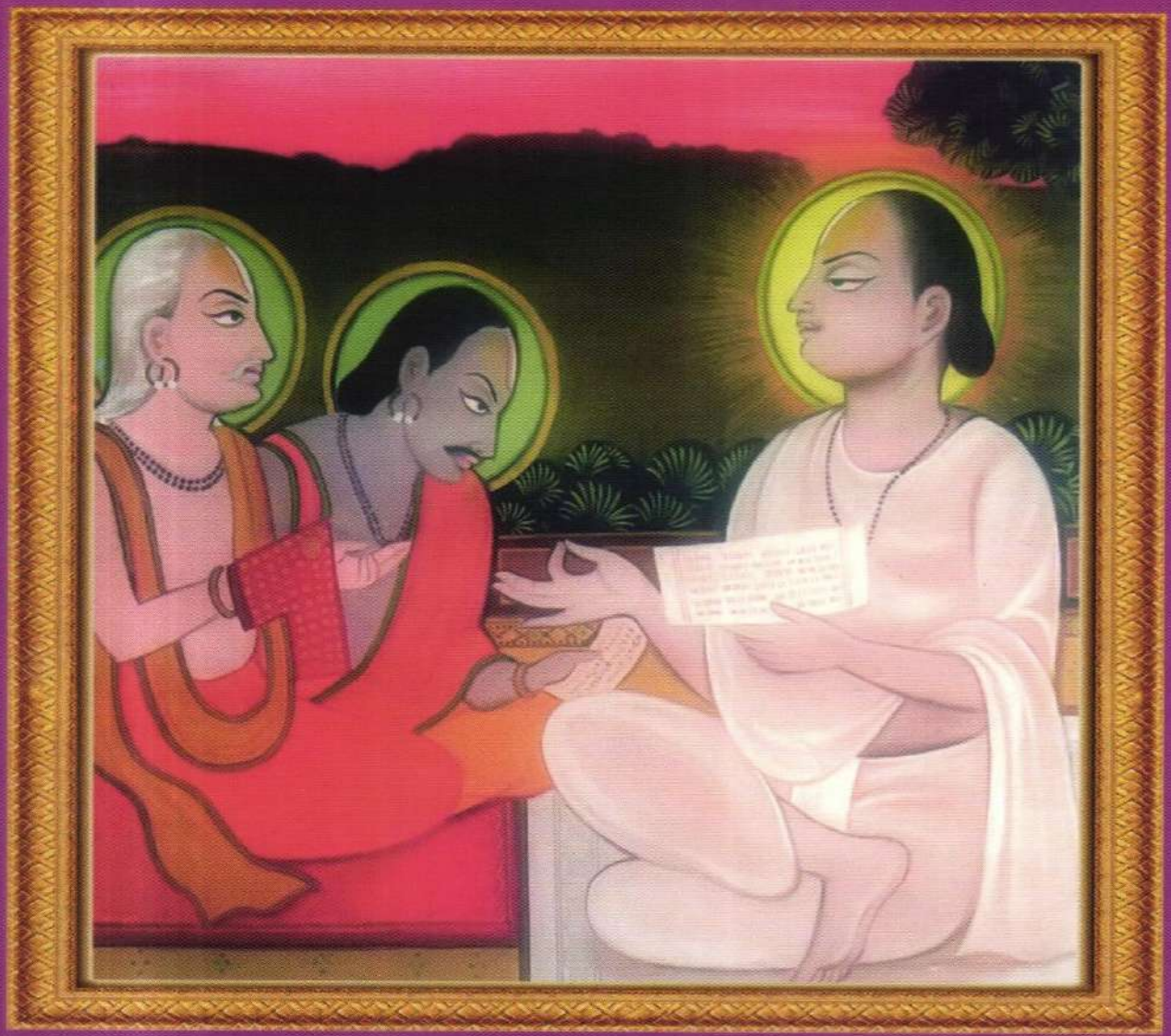

सहयोग प्रकाशन

सहयोग प्रकाशन:

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी(किशनगढ-मुंबई)
गोस्वामी श्रीमिलनकुमारजी श्रीलालमणीजी (कोटा-जोधपुर-मुंबई),

'सिद्धान्तमुक्तावली' अध्ययनसत्र (२६/०१-०४/०२, २००८) के उपलक्ष्यमें
श्रीबालकृष्णजी हवेली,
जूनी धानमंडी,
जोधपुर, राजस्थान.

श्रीकिशोर राठी, जयपुर
श्रीमती अनुराधा के मास्तर, मुंबई
श्रीसचिन संघवी, मुंबई
श्रीमती शोभा भाटीया, कांदीवली
श्री मदनमोहन शुद्धाद्वैत ट्रस्ट, चेन्नई
श्रीनीरज शाह, यु.एस्.ए.
गो.वा.श्रीकृष्णलाल मास्तर, मुंबई
श्रीमती पार्वती भाटीया, मलाड,
श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट
श्री प्रितेष शंकरलाल शाह, वडोदरा

संस्करण	वि.सं.	प्रति	
१.	२०४७	१०,०००	(गुजराती)
२.	२०५०	५०००	(व्रजभाषा)
३.	२०६०	४०००	(व्रजभाषा)
४.	२०६०	५०००	(गुजराती)
५.	२०६०	३०००	(गुजराती)
६.	२०६०	२०००	(गुजराती)
७.	२०६०	२०००	(गुजराती)
८.	२०६१	३०००	(हिन्दी)
९.	२०६१	२०००	(हिन्दी)
१०.	२०६१	१०००	(गुजराती)
११.	२०६१	१०००	(गुजराती)
१२.	२०६२	११००	(हिन्दी)
१३.	२०६३	३०००	(व्रजभाषा)
१४.	२०६४	१०,०००	(गुजराती)
१५.	२०६४	१०,०००	(प्रस्तुत हिन्दी संस्करण)
		कुल प्रति = ६०,१००	

प्रकाशनवर्ष:
वि.सं. २०६४, श्रीवल्लभाब्द ५३०, ई.स.२००७

प्रति : १०,००० नि :शुल्क वितरणार्थ

मुद्रक:
श्रीवल्लभ बुक मेन्यु. कं., अमदावाद

डिज़ाईन :
लिप्सा - दिप्ती

॥ अमृतवचनावली ॥

सहयोग प्रकाशन

।। अनुक्रमणिका ।।

- श्रीनाथजी १
- महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य २
- श्रीगोपीनाथप्रभुचरण ३
- श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण ४
- श्रीवल्लभात्मज-श्रीबालकृष्णजी ५
- श्रीगोकुलनाथप्रभुचरण ६
- श्रीहरिराय महाप्रभु ६
- गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण ७
- नि.ली.गो.श्रीनृसिंहलालजी (मुम्बई) ८
- नि.ली.गो.श्रीमट्टुजी महाराज (जतिपुरा) ९
- नि.ली.गो.श्रीगोवर्धनलालजी(श्रीनाथद्वारा) ९
- नि.ली.गो.श्रीरणछोड़लालजी (राजनगर) १०
- नि.ली.गो.श्रीवागीशलालजी (अमरेली) १०
- नि.ली.गो.श्रीदेवकीनन्दनाचार्यजी (कामवन) ११
- नि.ली.गो.श्रीव्रजरत्नलालजी (सुरत) ११
- नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी (इन्दौर) १२
- नि.ली.गो.श्रीदीक्षितजी (किशनगढ-मुंबई) १३
- नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी (कांकरोली) १४
- नि.ली.गो.श्रीकृष्णजीवनजी (मद्रास-मुंबई) १६
- नि.ली.गो.श्रीगोविन्दरायजी (पोरबंदर) १७
- नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी (जामनगर) १८
- नि.ली. प्रथमेश गो.श्रीरणछोडलालजी(मुंबई-कोटा) २०
- नि.ली.गो.श्रीबालकृष्णलालजी (सुरत) २५
- नि.ली.गो.श्रीकृष्णकुमारजी (कामवन-मुंबई) २७
- नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी (कामवन) ३०
- नि.ली.गो.श्रीव्रजाधीशजी श्रीकृष्णजीवनजी (दहिसर) ३४
- नि.ली.गो.श्रीव्रजरायजी (अमदावाद) ३५
- गो.श्रीव्रजेन्द्रकुमारजी श्रीव्रजरायजी (अमदावाद) ३६
- नि.ली.गो.श्रीमाधवरायजी (मुंबई-नासिक) ३८
- गो.श्रीघनश्यामलालजी (कामवन) ३९
- गो.श्रीहरिरायजी (जामनगर) ४०
- गो.श्रीलालमणीजी (कोटा-जतिपुरा-मुंबई) ४१
- गो.श्रीमथुरेश्वरजी (वडोदरा-सुरत) ४३
- पू.पा.गो.श्रीव्रजेशकुमारजी (वडोदरा-कांकरोली) ४४
- गो.चि.श्रीवागीशकुमारजी (वडोदरा-कांकरोली) ४५
- गो.श्रीगोकुलोत्सवजी (इन्दौर-श्री नाथद्वारा) ४६
- पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी (अमरेली) ४७
- गो.श्रीद्युमिलकुमारजी श्रीमथुरेश्वरजी (वडोदरा-सुरत) ४८
- गो.सुश्रीइन्दिरा बेटीजी (वडोदरा) ५०
- नि.ली.गो.श्रीगोविन्दलालजी (कडी) ५१
- गो.श्रीव्रजेशकुमारजी श्रीगोविन्दलालजी (कडी) ५२
- गो.श्रीराजेशकुमारजी श्रीगोविन्दलालजी (कडी) ५३
- गो.श्रीविजयकुमारजी श्रीगोविन्दलालजी (कडी) ५४
- गो.श्रीवल्लभलालजी श्रीगोविन्दलालजी (कडी) ५५
- गो.चि.श्रीयोगेश्वरजी श्रीमथुरेश्वरजी (वडोदरा) ५६
- गो.श्रीवल्लभरायजी (सुरत) ५८
- गो.श्रीहरिरायजी महाराज (पोरबंदर) ५९
- गो.श्रीद्वारकेशलालजी श्रीगोविन्दरायजी (सुरत) ६०
- गो.श्रीनवनीतलालजी श्रीगोविन्दरायजी (भावनगर) ६३
- गो.श्रीवल्लभलालजी श्रीगिरिधरलालजी(कामवन) ६५
- गो.श्रीरमेशकुमारजी (मुलुंड) ६७
- गो.श्रीनीरजकुमारजी श्रीमाधवरायजी (मुंबई-वापी) ६८

- गो.श्रीमाधवरायजी (वेरावल) ६९
- गो.श्रीशरद्कुमारजी श्रीमुरलीधरजी (वेरावल) ७१
- गो.श्रीचन्द्रगोपालजी श्रीमुरलीधरजी (वेरावल-पोरबंदर) ७२
- गो.श्रीअजयकुमारजी (मद्रास-पूना) ७३
- गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी श्रीव्रजेशकुमारजी (वडोदरा) ७४
- गो.श्रीश्यामसुंदरजी श्रीमुरलीधरजी (बोरीवली) ७५
- गो.श्रीव्रजप्रियजी श्रीमुरलीधरजी (बोरीवली) ७६
- गो.श्रीरसिकरायजी श्रीद्वारकेशलालजी (उपलेटा) ७६
- गो.चि.श्रीपुरुषोत्तमलालजी (जुनागढ) ७८
- गो.श्रीयोगेशकुमारजी (मुंबई) ७९
- गो.श्रीगोपिकालंकारजी (माणावदर-राजकोट) ८१
- संयुक्तघोषणापत्र पर वल्लभवंशज गोस्वामी आचार्योंके हस्ताक्षरकी फोटो कॉपी. ८३
- संयुक्तघोषणापत्रके समर्थनमें हस्ताक्षर और/अथवा पत्रद्वारा सम्मति प्रदान करनेवाले गोस्वामी आचार्योंके चित्र. ८४
- संयुक्तघोषणापत्रमें निरूपित सम्प्रदायके सिद्धान्तोंमें समर्थन देता हुवा नि.ली.गो.श्रीगोविन्दलालजी (कडी-कोटा) का पत्र. ८९
- नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज, जामनगर द्वारा लिखित पत्र जिनमें आपने अपने सभी बालकों सहित संयुक्तघोषणापत्रमें निरूपित सम्प्रदायके सिद्धान्तोंमें अपना समर्थन प्रकट किया है. ९०
- पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई 'सिद्धान्तवचनावली' पर सम्मतिके कतिपय हस्ताक्षरोंकी फोटो कॉपी. ९३

श्रीनाथजी

पाछें श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्धनधरसों पूछें जो ''महाराज! कृष्णदासकी तो देह छूटी...सो हम कौनको अधिकार (ट्रस्टीपनो) देके बिगार करें? तासों आपु कहो ताकों अधिकारी (ट्रस्टी) करें''.

तब श्रीगोवर्धननाथजी कहे जो ''हमहु कौन जीवको बिगार करें? जो कोई अधिकार लेयगो (ट्रस्टी बनेगो) ताको बिगार होयगो! तासों तुम एक काम करो जो अधिकारको दुसाला ले सबके आगे कहो : ''जाकों अधिकार करनो (ट्रस्टी बननो) होय सो दुसाला ओढो. तब जो आयके कहे ताकों देऊ. सो जाकों गिरनो होयगो सो आपु ही आयेगो''.

(८४ वैष्णव वार्ता, कृष्णदासकी वार्ता, प्रसंग-१०)

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य

जो कटोरी (गहने) धरिके सामग्री आई सो तो भोग श्रीठाकुरजी आप ही के द्रव्यको आरोगे सो आप ही को भयो. जो श्रीठाकुरजीको द्रव्य खायगो सो मेरो नाहिं अरु मेरो सेवक भगवदीय होयगो सो देवद्रव्य कबहूं न खायगो. जो खायगो सो महापतित होयगो. ताते वा प्रसादमेंते भोजन करिवेको अपनो अधिकार न हतो; याकेलिए गोअन्कों खवायो अरु श्रीयमुनाजीमें पधरायो. यह सुनिके सब वैष्णव चुप होय रहे. (घरुवार्ता-३)

श्रीभागवतको स्वयं ही पढना चाहिये. लौकिक-पारलौकिक किसी भी हेतु-प्रयोजनसे श्रीभागवतको पढना-सुनना नहीं चाहीये. प्राण कण्ठ तक आ गये हों तब भी भागवतकी कथा दक्षिणा लेकर आजीविकाकेलिये नहीं करनी चाहिये. (निबन्ध)

कथा-कीर्तनसे आजीविका चलानेवाले नीच लोग मुख-मल आदिके प्रक्षालनके उपयोगमें आये हुवे गंदे जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें खोदे जाते गढ्ढे(गटर)के जैसे होते हैं. पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे नीच गायकोंके तुल्य (गटरके जैसे) ही होते हैं. इन गानोपजीविओं द्वारा किये जाते कथा-कीर्तन नहीं सुनने चाहिये. (जलभेद)

श्रीगोपीनाथप्रभुचरण

श्रीआचार्यजीको वैष्णवने आकर कहा : "महाराज! श्रीद्वारकानाथजी वैभव सहित पधारे हैं".

...तब श्रीआचार्यजीने कहा: "क्या ठाकुरजीका वैभव देखकर तुम खुश हुवे?'

तब श्रीगोपीनाथजीने कहा : "आपका कहलाकर जो श्रीठाकुरजीकी वस्तु (देवद्रव्य) पर अपना मन बिगाड़ेगा उसका निर्मूल नाश होगा".

यह सुनकर श्रीआचार्यजीने कहा: "हमारा मार्ग तो ऐसा ही है".

(८४ वैष्णव वार्ता, दामोदरदास सम्भलवारेकी वार्ता)

श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण

(क) धनादिकी कामनाकी पूर्तिकेलिये जो शास्त्रविहित श्रवण-कीर्तन-सेवा आदि किये जाते हैं उनको कर्ममार्गीय समझना चाहिये. अपनी आजीविका चलानेकेलिये धनोपार्जनके रूपमें जो श्रवण-कीर्तन-सेवा आदि किये जाते हैं उनको तो खेती-बाड़ी जैसे व्यवसायकी तरह 'लौकिक कर्म' ही कहना चहिये (धर्म-भक्ति सर्वथा नहीं). मलप्रक्षालानार्थ गंगाजलका उपयोग करनेवालेको उसके मलकी सफाई होनेसे अधिक गंगास्नानका कोई भी फल मिलता नहीं है. इतना ही नहीं, ध्यान देनेलायक बात यह है कि गंगा जैसी पवित्र नदिके जलका ऐसा घृणित कार्यकेलिये उपयोग करनेके कारण वह पापी बनता है. इसी तरह प्रभुकी सेवा-कथाके माध्यमसे पैसे कमानेवालेको सेवा-कथाका कोई भी (धार्मिक-भक्तिमार्गीय) फल तो प्राप्त नहीं ही होता है प्रत्युत ऐसे अधम आचरणके कारण वह पापका ही भागी होता है.

(भक्तिहंस)

(ख) तब श्रीगुसांईजी आपु कहे : ''जो हम कौनसे जीवकों कहें, जो कौनसे जीवको बिगार करें! सुधारनो तो बहोत कठिन है और बिगारनो तो तत्काल है! तासों श्रीगोवर्धनधरको अधिकार (ट्रस्टीपद) कौनकों देंय ? कौनको बिगार करें ? ... पाछें श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्धनधरसों पूछें जो ''महाराज! कृष्णदासकी तो देह छूटी...सो हम कौनको अधिकार देके बिगार करें ? तासों आपु कहो ताकों अधिकारी (ट्रस्टी) करें''. तब श्रीगोवर्धननाथजी कहे जो ''हमहु कौन जीवको बिगार करें? जो कोई अधिकार लेयगो (ट्रस्टी बनेगो) ताको बिगार होयगो! तासों तुम एक काम करो जो अधिकारको दुसाला ले सबके आगे कहो (जो) जाकों अधिकार करनो (ट्रस्टी बननो) होय सो दुसाला ओढो. तब जो आयके कहे ताकों देऊ. सो जाकों गिरनो होयगो सो आपु ही आयेगो''.

(८४ वैष्णव वार्ता, कृष्णदासकी वार्ता, प्रसंग-१०)

श्रीवल्लभात्मज-श्रीबालकृष्णजी

यहां भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें सेवोपयोगी स्थानके रूपमें निज घरको विधान उपलब्ध होयवेसूं, अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवा छोड़के कोई दूसरी जगह (अर्थात् हवेलीन्में, जैसे आजकल, भेंट-सामग्री पधराके नित्य या मनोरथन की झांकी कर लेनो वैष्णवन्ने पुष्टिमार्गमें परमधर्म मान लियो हे वैसे) भगवत्सेवा करवेवालेन्कुं कभी भक्ति सिद्ध नहीं हो सके हे.

(भक्तिवर्धिनी व्याख्या-२)

श्रीगोकुलनाथप्रभुचरण

अपने सेव्य-स्वरूपकी सेवा आप ही करनी. और उत्सवादि समयानुसार, अपने वित्त अनुसार करने, वस्त्राभूषण भांति-भांतिके मनोरथ करी सामग्री करनी.

(२४ वचनामृत)

श्रीहरिराय महाप्रभु

जब सन्तदासको सगरो द्रव्य गयो तब श्रीठाकुरजीकी सेवामें मंडान श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों राखे और श्रीठाकुरजीके द्रव्यमेंते चौबीस टका पूंजी करि कोड़ी बेचते. सो श्रीठाकुरजीकी पूंजीमेंते तो कासिदको दियो न जाई सो कमाईको टका दिये. तब इनकी मजूरीको राजभोग न भयो सो महाप्रसाद हू न लियो. टकाके चूनको न्यारो भोग धरते सो राजभोग जानते, महाप्रसाद लेते, ओर नित्यको नेग बहोत श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों होतो; ताते आपुनी राजभोगकी सेवा

सिद्ध न भई (जाने). कासिदको दिये सो नारायणदासको लिखें जो "तुम्हारी प्रभुतातें एक दिन राजभोगको नागा पर्यो जो मेरी सत्ताको भोग न धर्यो!" या प्रकार सन्तदास विवेकधैर्याश्रयको रूप दिखाये. विवेक यह जो श्रीगुसांईजीको हूंडी पठाई – आपुनी सेवा न भई – राजभोगको नागा माने. धैर्य यह जो श्रीठाकुरजीके द्रव्यमेंते खान-पान न किये. आश्रय यह जो मनमें आनन्द पाये – दुःखक्लेश न पाये.

(भावप्रकाश ८४ वैष्णवनकी वार्ता-७६)

गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण

पारिश्रमिकके रूपमें वित्त दे के कोई दूसरेके द्वारा सेवा कराई जावे तो चित्तमें अहंकार तो बढ़े ही है परन्तु ऐसी खरीदी भई सेवासु चित्त भगवान्‌में कभी चोंट नहीं सके है. भगवत्सेवार्थ कोई दूसरेसूं पारिश्रमिकके रूपमें धनादिक लिये जावेपे तो, जैसे पंडा-पुरोहितन्‌कुं यज्ञ-यागादिको फल नहीं मिले है परन्तु यजमानन्‌कुं ही मिले है, वेसे ही सेवाकर्ताकी सेवा निष्फल बन जाय हे.

शंका : यजमान जैसे दक्षिणा दे के पुरोहितन्‌के द्वारा यज्ञयाग करा लेवे है वैसे ही भगवत्सेवा (आजकल जैसे पुष्टिमार्गीय हवेलीन्‌में वैष्णवगण गुसांई-मुखिया-भीतरिया-समाधानीकी बटालियनसूं करवा लेवे हें वा तरह : अनुवादक)

करा लेवेमें क्या बुराई है ?

समाधान : समाधान ये जाननो जो कर्ममार्गमें ऐसो करनो विहित होवेसुं पुरोहितन्सूं कर्म सम्पन्न करा लेनो आपत्तिजनक नहीं है. भक्तिमार्गमें, परन्तु, या तरहसूं भगवत्सेवा करा लेवेको कहीं विधान उपलब्ध नहीं होयवेसूं, कोई दूसरेकुं धन दे के सेवा करानो अनुचित ही हे. भक्तिमार्गमें तो भगवदुक्त प्रकारसूं (निज घरमें निज परिजनन्के सहयोगद्वारा निजी तन-मन-धनसूं ही) भगवत्सेवा करनी चहिये.

(सिद्धान्तमुक्तावली-विवृति-प्रकाश-२)

नि.ली.गो.श्रीनृसिंहलालजी महाराज
(मुम्बई)

लौकिक अर्थकी इच्छा राखिके जो भगवद्भजनमें प्रवृत्त होय सो सर्वथा क्लेश पावे हे. इतने कछू भेंट-सामग्री मिलि जाये ऐसे लाभकेलिये पूजादिकमें प्रवृत्त होय सो 'पाखंडी' ओर 'देवलक' कह्यो जाय हे. तासूं लाभपूजार्थ सिवाय जामें निषेध नहीं हे ऐसी रीतिसूं "मेरो लौकिक सिद्ध होय" ऐसी इच्छासूं जो भजनमें प्रवृत्त भयो होय सो 'लोकार्थी' कह्यो जाय है. (सिद्धान्तमुक्तावलि-टीका श्लोक १६-१७)

नि.ली.गो.श्रीमट्टूजी महाराज
(जतिपुरा)

जो श्रीवल्लभकुल हैं वे तो आपुने सेव्यस्वरूपपें कैसो स्नेह राखत हैं जो एक ठौर द्रव्यकी ढेरी करो और दूसरी ठौर श्रीठाकुरजीकों पधरावो तो श्रीवल्लभकुल वा द्रव्यकी ओर देखेंगे हु नाहीं; अरु श्रीठाकुरजीकों अतिस्नेहसों पधराय लेंगे. परि जो या कलिको जीव है वाकुं तो द्रव्य बहुत प्रिय है. तासों वो तो श्रीठाकुरजी सन्मुख हु नाहीं देखेगो अरु केवल वैभवकुं देखेगो अरु मोहित होय जायेगो. (३२ वचनामृत; वचनामृत-५)

गोस्वामी तिलकायत
नि.ली.गो.श्रीगोवर्धनलालजी महाराज
(श्रीनाथद्वारा)

श्रीउदयपुर दरबारकुं आशीर्वाद! याके द्वारा सूचित कियो जावे हे कि ... सेवा आदि विषयन्में पुरातन तथा प्रवर्तमान प्रणालिके अनुसार काम कियो जायेगो; ओर यदि पुरातन परम्पराको बाध न होतो होयगो ओर समिति कोइ तरहके सुधारकी इच्छा रखती होयगी तो ऐसे सुधार भी स्वीकारे जायेंगे. ओर श्रीठाकुरजीको द्रव्य अपने व्यक्तिगत उपयोगमें नहीं वापर्योजायेगो, जेसी कि परम्परा आज भी हे ही, ओर याकुं निभायो जायेगो. तो भी मेरे पूर्वजन्के समयसूं चले आ रहे मेरे स्वामित्वके हक्क वा ही तरह कायम रहेंगे.

(डेक्लरेशन, मिति भाद्रशुक्ला पञ्चमी, वि.सं.१९४८=ता.५-९-१८९३)

नि.ली.गो.श्रीरणछोड़लालजी महाराज
(राजनगर)

...या ही तरह अपने यहां जो सन्मुखभेंट धरी जाय हे वो भी देवद्रव्य होवे हे; और वा सामग्रीकुं काममें नहीं लियो जाय है. श्रीगोकुलनाथजी और श्रीचन्द्रमाजी के घरमें आज भी ये नियम पाल्यो जाय हे. वहां जो सन्मुखभेंट आवे हे, वाकुं कीर्तनीया-महावनिया ले जावे हे. वो वल्लभकुलको श्रीयमुनाजीको पंडा हे. दूसरो कोई वाको अनुकरण करे तो वो अनुचित है... हम श्रीनाथजीके सामने जो सन्मुख भेंट धरें हैं वो श्रीमहाप्रभुजीकी पादुकाजीकुं धरें हैं फिर भी वो आभूषणनमें वापरी जावे है, सामग्रीमें नहीं. सन्मुखभेंट धरवेमें बहोत अनाचार होवे है. या तरहसूं आयो द्रव्य 'देवद्रव्य' बने हे...वाकुं लेवेवालेकी बुद्धि बिगड़े बिना नहीं रहे है. (वचनामृत.४८४-८७)

नि.ली.गो.श्रीवागीशलालजी महाराज
(अमरेली)

महाराजकुं जो आमदनी वैष्णव आदिनसूं होवे हे वामेंसूं घरखर्चाके रूपमें महाराज ठाकुरजीकी सेवाको खर्चा निभावें हें. ठाकुरजीकेलिये चल या अचल सम्पत्ति अलगसूं निकालके वामेंसूं ठाकुरजीकी सेवाको खर्च निभायो नहीं जावे हे. ठाकुरजीके वैभवको, नेगभोगको, आभूषण-वस्त्र आदिको खर्च महाराज स्वयं अपनी आमदनीके अनुसार निभावे हें... ठाकुरजीके सन्मुख भेंट धरी नहीं जा सके... ठाकुरजीकी भेंट देवमन्दिरमें भेजनी पड़े हे. महाराज वा भेंटकुं अपने उपयोगमें ला नहीं सकें. (श्रीवागीशलालजीके आम-मुखत्यार: "अमरेलीहवेली व्यक्तिगत है या सार्वजनिक" मुद्देपर सन् १९०९-१० में गायकवाडी बड़ौदा राज्यकी कोर्टमें दी गई जुबानी)

पञ्चमगृहाधीश
नि.ली.गो.श्रीदेवकीनन्दनाचार्यजी
(कामवन)

जैसे अपने पूर्वपुरुष स्वयं अपने धर्मके सत्यस्वरूप तथा शुद्धाद्वैतसिद्धान्त कुं पूर्णतया समझके वैष्णवधर्मको यर्थाथ उपदेश लोगनकुं देते हते; और मध्यवर्ती कालमें जो सम्पत्ति आदिके कारणनसूं हमने बहोत हद तक छोड़ दिये हें, या कारणसूं अधिकांश लोगनमें साधारण सेवा और केवल वित्तजा भक्ति की ही रूढ़िके अनुसार जानकारी बच गयी हे.

(मुंबईके वैष्णवनकुं लिखित पत्र : 'आश्रय' अप्रिल ८७ के अंकमें प्रकाशित)

नि.ली.गो.श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज
(सुरत)

वकील : यदि कोई भी पुष्टिमार्गीय मन्दिरमें, वैष्णव श्रीठाकुरजीकी सेवा और नेग-भोग के लिये; और श्रीठाकुरजीकी सेवाकुं निभावेकेलिये भेंट आदि दे के वित्तजा सेवा करते होंय और वा मन्दिरमें तनुजा सेवा भी करते होंय तो वो मन्दिर पुष्टिमार्गीय नहीं होवे है ऐसे आपको कहनो हे ? ....☞

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको सुनील जागिरदार, सुरत के सादर प्रणाम

पू.पा.महाराजश्री : पुष्टिमार्गीय वैष्णवन्केलिये स्वतन्त्रतया तनुजा या वित्तजा सेवा करवेकी कोई प्रक्रिया नहीं हे. और ऐसी सेवा की जाती होय तो वाकुं साम्प्रदायिक मन्दिर नहीं कह्यो जा सके.

("नड़ियादकी हवेली वैयक्तिक हे या सार्वजनिक" विवादमें पुष्टिमार्गके विशेषज्ञ साक्षीके रूपमें दी जुबानी)

द्वितीयगृहाधीश

नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी महाराज

(इन्दौर-नाथद्वारा)

हमारा प्रमुख सिद्धान्त है 'असमर्पित त्याग'. उत्तम उपाय तो यही है कि घरमें जो भी रसोई बने वह प्रभुको भोग धरके बादमें ही महाप्रसाद लिया जाय. ... जहां तक असमर्पितका त्याग नहीं होगा वहां तक बुद्धि अच्छी नहीं हो सकती. सानुभावता कब सिद्ध हो सकती है ? जब हमारी बुद्धि निर्मल हो. ... आज हम हीरे (घरमें बिराजते सेव्य प्रभु) को परख नहीं सकते. सच्चे हीरेको जौहरी ही परख सकता है. स्थिति क्या है कि हम जूठे हीरेको सच्चा मानकर उसीके पीछे (हवेली-मन्दिरोंमें) दौड़ लगा रहे हैं. श्रीमहाप्रभुजीने तो निधिरूप सच्चा हीरा हमको दिया है. भगवान्

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको प्रवीणचंद्र शाह, महेलोल के सादर प्रणाम

गीतामें कहते हैं कि "दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमीश्वरम्". भगवान्को पहचाननेकेलिये तो दिव्यता प्राप्त होनी चाहिये. दिव्यता ही आत्मबल है. ... अतः मेरा तो आप लोगोंसे साग्रह अनुरोध है कि आत्मबल प्राप्त करनेकेलिये अपना कुछ दैनिक नियम बनाईये. षोडशग्रन्थके पाठका नियम लीजीये...

(श्रीमद्वल्लभ अने श्रीहरिरायजी जीवनदर्शन, भाग-२, वचनामृत ७, पृष्ठ १२४)

नि.ली.गो.श्रीदीक्षितजी महाराज

(मुंबई-किशनगढ़)

(क)और जब जनरल पब्लिक ट्रस्ट है तब ठाकुरजीकुं गोस्वामीके सम्बन्धसूं पृथक् करके, ठाकुरजीकुं सब सम्पत्ति अर्पण करके, अर्थात् भेंट करके रिलीजिअस एंडॉमेन्टके रूपमें भये वे ट्रस्ट हैं. ऐसी अवस्थामें इन ट्रस्टन्सूं जो नेग-भोग चलायो जावे है, वो देवद्रव्यसूं चलायो जा रह्यो है. देवद्रव्यको उपभोग करनेवालो अन्तमें देवलक ही होवे है. श्रीमदाचार्यचरणने प्रभुकी सोनेकी कटोरी गिरवी रखके जब भोग अरोगायो तब आपने वा द्रव्यसूं समर्पित सारोको सारो प्रसाद गायन्कुं खवा दियो. ये है साम्प्रदायिक सिद्धान्त. या प्रकारके आदर्शरूप सिद्धान्तन्को जा (सार्वजनिक मन्दिर-हवेलीकी) प्रथासूं विनाश होवे, आचार्यन्कुं देवलक बनायो जाय, वा प्रथाकुं जितनी शीघ्र सम्प्रदायसूं हटा दी जाय, उतनो ही श्रेय यामें गोस्वामिसमाज तथा वैष्णवसमाज को निहित है.

(ख)भगवत्सेवा सम्प्रदायकी आत्मरूप प्रवृत्ति है. आचार सेवाको अंग है, सेवाके अनुकूल आचारको पालन कियो जानो चहिये. आचार-पालनकुं प्रमुखता देके भगवत्सेवाको त्याग भी उचित नहीं है. भगवत्सेवा जैसे भी बने (अपने घरमें) करो...गुरुघरन्में मत भेजो...यदि हम भगवद्द्रव्यकुं पेटमें डालेंगे तो वो अपराध है. ग्रन्थन्के अध्ययनके प्रति हमकुं समाजकुं आकृष्ट करनो चहिये.

(क-''आचार्योंच्छेदक ट्रस्ट प्रथासे पुजारीपनकी स्थापना घोर सिद्धान्तहानि एवं घोर स्वरूपच्युति'' लेख पृष्ठ ७. ख-'श्रीवल्लभविज्ञान' अंक ५-६ वर्ष १९६५ में प्रकाशित वक्तव्य)

तृतीयगृहाधीश

नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज

(कांकरोली)

(क)कालकी भीषणता और परिस्थितिकी विषमता के अत्यन्त विकट युगमें श्रीमत्प्रभुचरणन्के दिव्य सिद्धान्तन्के ऊपर अटल रहवेपर ही जीवमात्रको ऐहिक और पारलौकिक कल्याण हो पावेगो. ....वैष्णव-हवेलीन्के वैभवके कारण जो वैष्णव घरसेवाकुं भूल चुके हते, संयोगवशात् उन हवेलीन्में श्रीके दर्शन आज बन्द भये हैं यासुं अब वैष्णवन्के घर पुनः भगवत्सेवासूं किलकिलाते हो जायेंगे. ये लाभ सम्प्रदाय और सम्प्रदायीन् केलिये मामूली नहीं रहेगो.

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको बिपिनचंद्र शाह, पावी के सादर प्रणाम

ईश्वरेच्छा अनाकलनीय होवे है. मोकुं तो श्रद्धा है के या कठिन परीक्षामें हम सभीन्को श्रेय ही सिद्ध होवेवालो है.

(ख)मेरे अनुयायीनकुं दो प्रकारकी दीक्षा दउं हूं. प्रथम कंठी बांधनी तथा दूसरी ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा. कंठी-बांधनी साधारण वैष्णवनकुं ही दी जावे हे तथा ब्रह्मसम्बन्ध विशेषरूपसूं उन अनुयायीनकुं, जो सेवामें विशेषरूपसूं आगे बढ़नो चाहे हें. पहली दीक्षाकुं 'शरण-दीक्षा' कहें हैं तथा दूसरी दीक्षाकुं 'आत्मनिवेदन' कहें हैं. शरणदीक्षासूं वैष्णव सिर्फ नामस्मरण करवेको ही अधिकारी बने है तो सेवावाले वैष्णवकुं ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा लेवेके बाद ही अधिकार मिले हे. ब्रह्मसम्बन्ध लेवे वालो वैष्णव अपने घरमें ही सेवाको अधिकारी होवे हे... हम स्वरूपकी सेवा नन्दालयकी भावनासूं करें हें. यालिये हम सातोंके सात पुत्रन्के घर 'घर' ही कहलावे हैं ओर हमारे घरकी सृष्टि 'तीसरे-घरकी-सृष्टि' कहलावे है.

(ग) श्रीआचार्यचरणके सिद्धान्तोमें भगवत्सम्बन्ध और भगवत्सेवा को ही प्रधानता दी गयी थी. बादमें, परिलक्षित होता है कि, उसमें भी कुछ अन्तर आ गया. ... श्रीआचार्यचरणके और श्रीप्रभुचरणके सेवक, हम देख सकते हैं कि, सभी प्रकारके हैं. ऐसा नहीं है कि अमुक विशिष्ट व्यक्ति ही भगवत्सेवाकेलिये योग्य होता है और अमुक परिस्थितिमें ही भगवत्सेवा हो सकती हो ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है. अनेक प्रकारके जीव भगवत्सेवा करते थे. उनमें स्मशानवासी, वेश्या आदिसे लेकर अच्छे विद्वान् ब्राह्मण भी थे. आजके समयमें, मुझे प्रतीत होता है कि, हम उन चरित्रोंको भूल कर पीछेसे मुख्य बन गये ऐसे केवल भावात्मक रूपको ले कर बैठ गये हैं कि जो आज भी वैष्णवोंमें प्रचलित है. ...मैं मानता हूं कि चरित्रोंका विचार करनेमें सिद्धान्तोंकी आवश्यकता होती है.

(क : श्रीमत्प्रभुचरण प्राकट्योत्सव=ता.२४-१२-४८के दिन मुंबईके पुष्टिमार्गीय वैष्णवन्की सभामें अध्यक्षीय प्रवचन. ख बयान : मूर्तिबा कार्या. सहा. कमि. देवस्थानविभाग खंड उदयपुर एवं कोटा बजरिये कमिशन मु.कांकरोली.फाईल संख्या.१-४-६४. श्रीद्वारकाधीशमन्दिर दिनांक ७।११।६५ ग : श्रीमद्वल्लभ अने श्रीहरिरायजी जीवनदर्शन, भाग-२, वचनामृत २०मुं, पृष्ठ १४६,१४९)

नि.ली.गो.श्रीकृष्णजीवनजी महाराज

(मुंबई-मद्रास)

आज मोकुं अपने हृदयके उद्‌गार कहवे दो, मेरो हृदय जल रह्यो हे, मन्दिरन्‌में मात्र द्रव्यसंग्रहकी प्रवृत्ति बच गई हे; ओर वोही अनर्थन्‌की जड़ है. ऐसे मन्दिरन्‌के अस्तित्वसूं कोई लाभ नहीं है. हमारो सम्प्रदाय सामुहिक नहीं वैयक्तिक है. सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक अवश्य है परन्तु सार्वजनिक नहीं. ''करत कृपा निज दैवी जीवनपर'' या उक्तिमें 'निज' शब्दको प्रयोग कियो गयो है. दैवीजीव कहीं भी हो सके हैं परन्तु सार्वजनिक रूपसूं नहीं. आज हम 'पुष्टि'को नाम लेवेके भी अधिकारी नहीं हैं! ... आजको हमारो जीवन चार्वाक-जीवन हो रह्यो हे. क्या हम, आज जा प्रकारको सम्प्रदाय हे, वाकुं जिवानो चाहें हैं? यदि सच्चे सम्प्रदायकुं चाहो हो तो स्वरूपसेवा घर-घरमें पधराओ एवं नामसेवापे भार रखो... भक्तिकी प्राप्ति स्वगृहमें सेवा करवेसूं ही होयगी. आजके इन मन्दिरन्‌सूं कोई लाभ नहीं है, क्योंकि इनमें द्रव्यसंग्रहकी प्रधानता आ गयी है; ओर जहां द्रव्य इकट्ठो होय है वहीं अनर्थ हो जावे है. आज सम्प्रदायको विकृत स्वरूप याके कारण ही है.

('वल्लभविज्ञान' अंक ५-६, वर्ष १९६५)

नि.ली.गो.श्रीगोविन्दरायजी महाराज

(पोरबन्दर)

(क) जैसे स्वरूपसेवा स्वार्थबुद्धिवश और लौकिक कार्य समझके नहीं करवे की श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है, वैसे ही नामसेवा भी वृत्यर्थ नहीं करनी चहिये, ऐसी आज्ञा श्रीमहाप्रभुजी निबन्धमें करें हैं... वृत्यर्थ सेवा करवेसूं प्रत्यवाय(दोष) लगे है. जैसे गंगा-जमुना जलको उपयोग गुदाप्रक्षालनार्थ नहीं कियो जा सके है, वैसे ही सेवाको उपयोग भी वृत्यर्थ नहीं करनो चहिये.

(ख) तन और वित्त प्रभुकेलिये वापर्योजाय तो मन भी प्रभुमें अवश्य लगे ही है. अतएव श्रीवल्लभने उपदेश कियो है के ''तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा''. मानसी जो परा है वो सिद्ध करनी होय तो तनुवित्तजा सेवा आवश्यक है. तन और वित्त कहीं एकत्र लगायो जाय तो चित्त भी वहां दिन-रात लग्यो रह सके है. दलालीको व्यवसाय करवेवालेके व्यवसायमें केवल तनसूं श्रम कियो जावे है परन्तु वामें वित्त स्वयंको लगायो नहीं जावे है. अतएव बजारके भावन्‌की घट-बढ़में दलालकुं तनिक भी मानसिक चिन्ता होवे नहीं है... कोई बच्चाको पिता केवल ट्युशन फी देके समझ ले है के बच्चा परीक्षामें पास हो ही जायेगो. इन तीनोंकुं फलप्राप्ति होवे नहीं है क्योंकि तनुजा-वित्तजा दोनों नहीं लगी. अब तनुवित्त दोनों लगावेवालेके चित्तप्रवण होवेको उदाहरण देखें: एक दुकनदार दुकान और माल की खरीदीमें पूंजी लगाके व्यापार शुरु करे, सुबहसूं रात तक वहां उपस्थित रहके जब तन भी व्यापारमें लगावे है तो या कारणसूं दिनरात वाकुं व्यापारके ही विचार आते रहे हैं: अच्छी तरह व्यापार कैसे करूं–कैसे व्यापार बढ़े... अतः पुष्टिमार्गमें प्रभुमें आसक्ति सिद्ध होवेकेलिये मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया समझायी गयी है कि भावपूर्वक भक्तकुं तनुवित्तद्वारा सेवा करनी चहिये.

(क-'सुधाधारा' पृ.११४. ख-'सुधाबिन्दु' पृ.७३)

नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज

(जामनगर)

''अति धन्यवादार्ह है कि आपने इतनी मेहनत करके सम्प्रदायके सिद्धान्तन् कूं कोर्टमें समझाये'' — ''हमारो यामें पूरो सहयोग रहेगो, तन-मन-धनसे ... हमारे सभी चि.बालक या कार्यमें सहयोग करवेकुं तैयार हैं''.

(गो.श्याम मनोहरजी (पार्ला-किशनगढ)कुं भेजे दि.२६-१०-८६ और ७-११-८६ के पत्रनमें. मूल पत्रकी फोटोकॉपिकेलिये देखीये : परिशिष्ट, पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा संक्षिप्तविवरण, हिन्दी)

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी

अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः

इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ...अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्धजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्धजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्धजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्धजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है. ...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें. ''बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु''.

(नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज एवं आपके सभी चि. बालक : गो.श्रीविट्ठलनाथजी, गो.श्रीहरिरायजी, गो.श्रीश्याममनोहरजी, गो.श्रीव्रजरत्नजी, गो.श्रीनवनीतरायजी तथा गो.श्रीबालकृष्णजी की उपर्युद्धत सम्मतीसे सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किया गया ''महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र'' १९८६.)

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको कृष्णदास देसाई, मितडी के सादर प्रणाम

प्रथमेश

नि.ली.गो.श्रीरणछोडलालजी महाराज

(कोटा-जतिपुरा-मुंबई)

(क) ट्रस्ट हवेली-मन्दिर यानि पुष्टिभावोंकी मौत :

भगवान्-स्वधर्म पूजीसे बंधकर नहीं चलते; वे श्रद्धा और प्रेमपरवश होकर चलते हैं. आज जो (मन्दिरों-हवेलियोंके) ट्रस्टोंकी या न्यासोंकी प्रणाली चल रही है वह पूजीवादकी एक अभिनव दास्तां है जिसमें भगवान्, गाय, गुरु और धर्मानुयायिओं पर एकछत्र साम्राज्य करनेकी लालच समायी हुई है. इस तरहसे आदर्शका जामा कहने हुए इस धनलिप्सा और धनिकों की दास्तांमें वह प्रेम नहीं है जो एक अकिंचन भक्तके "रहिये मेरे ही महल अनत न जैये..." इस आत्मीयता भरे मीठे बैनोंमें झलकती है. यह प्रेमभरा अननुनय है. और आजका ट्रस्टी और सत्ता भगवान्को पूजी या सत्ता के जोरपर यह कहते हैं कि "इस स्थानसे जरासा भी नहीं हिलना. ध्यान रखना, मैं तुम्हारा व्यवस्थापक, ट्रस्टी हूं. चाहो या न चाहो, तुमको मुझपर भरोसा करना ही होगा, समझे!" लोग समझते हैं कि यह धर्मरक्षाका ही एक सर्वश्रेष्ठ रूप है, किन्तु ...इसमें भी प्राणोंकी उतनीही असुरक्षा है जो मौतसे कम नहीं... वल्लभाचार्यने ऐसे जकड़े हुवे ईश्वरको दामोदर माननेसे भी इंकार कर दिया.

ठाकुरजीको ट्रस्टमें पधरानेवालोंने ठाकुरजीको बेच दिया है :

..अच्छी तरह सोचो कि ऐसी कौन माता होगी जो अपने लड़केको धनकी लालचमें बेच दे; या कोई प्रेमी कभी भी प्रत्यक्ष तो क्या सपनेमें भी ऐसा करना तो दूर रहा, सोच या देख भी नहीं सकता. इस विषयमें एक कहानी याद आती है. ...एक बार एक रुपये-पैसेवाली बांझ औरत (आधुनिक दर्शनीया वैष्णव और ट्रस्टी)ने एक गरीब(गोस्वामी गुरु)का बच्चा(ठाकुरजी) खिलानेकेलिये लिया. कुछ दिनों बाद बच्चेकी मांने जो

गरीब थी बच्चा मांगा तो अमीर औरतने कहा कि ये तो मेरा ही बच्चा है, तेरा नहीं है. जो तुझसे हो सके वह करले. बैचारी गरीब मां...न्यायकी मांग करने लगी...मगर सभी(वैष्णव, आम जनता, सरकार) लोग उस गरीबके खिलाफ गवाही देने चले आये. न्यायधीश चतुर था. ...न्यायधीश बोला कि ...इस(बच्चे)के दो देवेदार हैं इसलिये इसके दो टुकडे करके दोनोंको बराबर दे दिये जाय. अमीर महिला(ट्रस्टी)ने यह बात मान ली, परन्तु गरीब मांने रोते हुए कहा "नहीं हुजुर, यह बच्चा मेरा नहीं है; यह इसीका ही है, इसे मारीये मत"....यह त्याग एक सच्ची मां दे सकती है. यह तो बनावटी थोपी हुई व्यवस्था है.

इस तरह धनने ईमान खरीदा, भगवान् खरीदा और उस उन्मुक्त बालककी गुंजती किलकारियां हमेंश-हमेंश केलिये चुप हो गई. लोगोंने कहा कि अब भगवान् बोलते नहीं, हंसते नहीं, खेलते नहीं हैं. किन्तु यह आशा उससे की जा सकती है जो जीवित हो, किसीके प्यारमें बंधा हो. फिर उस खूबसूरत बच्चेकी नुमाईश और प्रदर्शन करने लगा, जैसे बेबी मिल्कके डिब्बेका चित्र या मोडेलका चित्र होता है.

ट्रस्टीओं द्वारा की जाती सेवा पूतनाके प्रेमके समान है :

रोज यह सोचा जाने लगा कि इससे क्या आमद हुई, कितनी ब्रिक्री हुई. और सभी व्यवस्थापक इसकी निगरानी करने लगे. जब कोई आता देखने तो उसे दुलास किया जाता. लोग समझते हैं कि यह प्यार है, भक्ति है. मगर था तो यह व्यवसाय ही, जिसका रूप पूतनाके प्रेमकी भांति सच्चाईको छिपा गया और भोली यशोदाने लाल उसे खिलाने दे दिया.

मन्दिर-हवेलियां दुकान बन चुके हैं :

कितनी बिक्री हुई इसका हिसाब रखा जाने लगा. कितना खाया और कितना कमाया इसकी नांप-तोल होने लगी. बिकने लगा धर्म और धर्मस्वरूप वह बालक भगवान् जो प्यारसे भक्तोंकेलिये भोला बन गया था. लोगोंने उससे फायदा उठाया और कह दिया—म यह सार्वजनिक ईश्वर है. उस सर्वशक्तिमान्को स्वार्थका साधन और जगन्नियन्तापर धननियन्ता शासन करने लगे. हालत यह हुई कि कौन उसको खिलाये-पिलाये ? वह तो सार्वजनिक था !

मन्दिर-हवेलियोंके ठाकुरजी जड बन चुके हैं :

द्वारकाधीशको भी यह छूट थी कि वह विदुरके घर साग खा सकता था किन्तु यह तो नितान्त निष्क्रिय बन गया, केवल दिखावा मात्र !

...क्या यह सिद्धान्त किसी प्रियतमकेलिये प्रियतमा या माता को मान्य होगा ? किन्तु यह आज मान्य है और मान्य करना होगा. केवल पैसेकेलिये अपना दिल नहीं, दुनियाका दिल बहेलानेको, वारांगनाकी भांति, जिसमें हृदय नामकी कोई वस्तु रह नहीं सकती और है तो वह मानी नहीं जाती. सभीका अधिकार है उसपर, जैसे वह सम्पत्ति हो, जो चाहें खरीदें, जो चाहें प्रयोगमें लायें, जैसा चाहें वैसा करें ! उसको करना ही होगा. कैसी अनोखी है यह भक्ति और प्रेम की परिभाषा ! फिर भी स्वतन्त्रताका घोष किया जाता है ! क्या यह ही वह भक्ति है जिसे श्रीवल्लभ ''माहात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेह'' कहते हैं ? आज इस भक्तिका माहात्म्य ये ही है कि किस भगवान्के यहां कितनी आमद होती है !

ट्रस्ट मन्दिर पुष्टिप्रभुके लिये जेलखाना :

...अब कोई प्यारसे यह नहीं कह सकता कि मेरा बालक देरसे सोया है, जल्दी मत जगाना. सूरदासका पद भगवान्को जगानेकेलिये दुलार नहीं रहा, न कलेउके पदमें ममताका अनुनय है; यह तो कम्पल्सरी ब्रेकफास्ट है जिसे समय पर कैदीकी तरह ईश्वरको करना पडता है. मानो एक जेलखानेमें उठने या खाने की घंटी बजी हो !

ठाकुरजी बिक रहे हैं; मनोरथी-दर्शनार्थी भक्त नहीं ग्राहक हैं :

...श्रीवल्लभाचार्यने जीवनमें अपने कलेजेके टुकडे अपने आराध्यको कभी दूर नहीं होने दिया. आज वो बिक रहा है धनिकोंके हाथों और जकड़ा है सरकारी शिकंजेमें, पब्लिक् पॉलिसीके अंदर. और अब उसे म्युझियमकी शोभा बनानेका समय निकट आ रहा है.

धर्म और भगवान् की दशा किसी कोल्गर्ल्से भी बदतर है :

बेचारे धर्म और भगवान् की दशा किसी कोल्गर्ल्से भी बदतर है. ...भगवान्की सुंदर विनिन्दितमुक्ता-दंतपंक्ति बगला भगतोंको देखकर खिल जाती है. सदानन्द निरानन्द होकर इन ईमान खरीदनेवालोंके हाथों खुल्लेआम बेचा जा रहा है. ...सबको सहारा देनेवाला स्वयं बेसहारा होकर

बैठा है अपने धनिक ग्राहकोंकी प्रतीक्षामें !

हवेली-मन्दिरमें देवद्रव्यका प्रसाद खाना मतलब नरककी टिकिट कटवाना :

धर्मशास्त्रमें जिस बुद्धिमान् ब्राह्मणको देवलकवृत्तिसे अधम माना गया है ... आज उस देवलकवृत्तिका धन चटकारे ले लेकर वैष्णवसमाज खा रहा है. नाथद्वारेमें क्या चीज स्वादिष्ट है...ये ही विवेचन करता है...किन्तु मेरा कर्तव्य क्या है यह कभी नहीं सोचता.

श्रीनाथजीमें धनिकोंका साम्राज्य है :

...नाथद्वारामें आजकल पैसा अधिक आ रहा है, क्योंकि वहां इन धनिकोंका साम्राज्य है. इनके दलाल श्रीनाथजीकी महिमा बढाते हैं. ...गरीबोंकेलिये ठहरनेवाला भगवान् अब धनिकोंकेलिये ठहरता है.

श्रीवल्लभके आदर्शोंके स्मशाजैसें मन्दिर-हवेलियां :

भगवन्नाम भागवतसे अस्पतालोंकेलिये करोडोंकी रकम जमा होती है, और जामनगरमें आदर्श स्मशान भी है, किन्तु यहां तो स्मशानसे भी आदर्श गायब होता जा रहा है ! शायद आदर्शका स्मशान है यह ट्रस्ट और सरकारी देवालय.

मन्दिरका प्रसाद खाया नहीं जा सकता है :

...वल्लभमतमें यह सिद्धान्ततः गलत है और ऐसे देवस्थानोंका चढावेका प्रसाद भी नहीं खाया जा सकता. क्योंकि वहां देवलकवृत्ति ही प्रधान है.

दर्शन-मन्दिर धर्मप्रचारका माध्यम नहीं हो सकते :

जहां तक भगवत्स्वरूप या मूर्तिका प्रश्न है, धर्मप्रचार उनसे सम्बन्धित नहीं है. और न इसे उचित कहा जा सकता है. क्योंकि भगवानने धर्मकी व्यवस्थाकेलिये वेदव्यासादि अनेक ज्ञानावतार और अंशावतार धारण करके ही धर्मरक्षा की है. आजकी (सार्वजनिक हवेली-मन्दिरकी) व्यवस्था आचार्योंचित और धार्मिक या भारतीय ही नहीं है तब वल्लभाचार्य सम्मत होनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता. ...हमारा इस विषयमें सुझाव है कि एक अलग व्यवस्था...करनी चाहिये जिससे वल्लभसिद्धान्तोंकी रक्षा हो सके. यदि ऐसी व्यवस्था नहीं की जाती तो देवद्रव्य होता है, जिसका सेवन करनेसे आचार्य स्पष्ट कहते हैं कि नरकपात होगा.

नकली बैठकें :

बैठकोंकी भावगंगा तो अब घरबैठे ही मनुष्यको पवित्र करने अपनी उत्ताल तरंगोंसे सारे खर-बारको ही सराबोर करने लगी है! ...८४ बैठकोंसे काम नहीं चला तो अब महाप्रभु श्रीवल्लभको मुसलमानोंके खेतोंमें अपनी झारी और अन्य चिह्न प्रकट करनेको विवश होना पड़ रहा है! ("हमारी धार्मिक स्थितिका वर्तमान स्वरूप एवं भविष्यकी व्यवस्थाहेतु प्रतिवेदन" दिना' : २५।२।८१)

(ख) श्रीवल्लभाचार्यने सेवाको खरीदनेकी बात नहीं कही है कि खरीद आओ रुपये देकर. नहीं. 'तनुवित्तजा' पदका अर्थ ही यह है कि वह समस्त पद है. जहां तन लगे वहीं धन लगे तब ही सेवा हुई. परन्तु धन लगे और तन न लगे तो सेवा हुई नहीं कहलाती है. (प्रथमेश वाक्सुधा-१, पृष्ठ ५६)

(ग) ..."सेवाऽपि कायिकी कार्या" यह नहीं कि पैसे दे दिये. पैसे देकर घरमें विवाहिता पत्नीको नहीं लाया जाता है, वेश्याको लाया जाता है. वेश्यासे घर नहीं बसता है यह स्पष्ट बात है. अतः साफ बात है कि भगवत्सेवा और वरण में पति-पत्नीका दृष्टान्त देते हैं कि जिनमें आत्मीय सम्बन्ध है. (प्रथमेश वाक्सुधा-१, पृष्ठ ७४)

(घ) भेंट भी आचार्यके सन्मुख ही होती है. प्रभुके सन्मुख भेंट नहीं होती है. देवलकवृत्तिसे बचनेकी विधि और वैदिक व्यवस्था को संम्हालकर रखना चाहिये अन्यथा बुद्धि बिगड़ेगी. ऐसा करनेसे पतन होता है, और हुवा है. (वहीं पृष्ठ १७१)

वस्त्र-अलंकारोंमें मन अधिक जाता हो तो ऐसा साहित्य रखनेकी आवश्यकता नहीं है. ऐसा करनेसे लौकिक बढ़ता है और धर्मभावना नष्ट होती है. ...अतः वैभव बढ़ानेकी श्रीगुसांईजीने ना कही थी. और श्रीमहाप्रभुजीने नावको डुबोकर पुरुषोत्तमको ही घरमें पधराया था. (वहीं पृ. १८०)

(ङ) धर्मकी परम्परा प्रदर्शनपर आधारित नहीं है पर एक यथार्थ जीवनका उज्वल पक्ष है... कुनवारा और अन्य मनोरथों ...का रूप आगे चलकर महाप्रभु श्रीवल्लभकी आचार-परम्परा और सम्प्रदायकी मर्यादा को आहत करनेवाला होगा जिसकी आज कल्पना भी की नहीं जा सकती है. (वहीं पृ. १९७)

नि.ली.गो.श्रीबालकृष्णलालजी महोदय

(सुरत)

(क) प्रश्न : 'देवद्रव्य' कायकुं कहे हैं? उत्तर : 'देवद्रव्य'को मतलब, देवको द्रव्य. ऐसो द्रव्य या पदार्थ जो देवकुं ही उद्देश्य बनाके अर्पण कियो गयो होवे वाकुं 'देवद्रव्य' कहे हैं. याही प्रकार गुरुकुं उद्देश्य बनाके अर्पण किये गये द्रव्यकुं 'गुरुद्रव्य' कह्यो जाय है. ... मन्दिरनमें ठाकुरजीके सन्मुखमें भेंट धरे जाते द्रव्यकुं और ट्रस्टकी ऑफिसमें आते द्रव्यकुं तो स्पष्ट शब्दनमें 'देवद्रव्य' कह्यो जा सके है; और वा द्रव्यसूं सिद्ध होती सामग्रीमें भगवत्प्रसादी होवेके बाद महाप्रसादपनो तो आवे है परन्तु वाके साथ वामें देवद्रव्यपनो भी रहे ही है. याही कारण वैष्णवनकुं ऐसे महाप्रसादकुं देवद्रव्य समझके ही व्यवहार करनो चहिये. ऐसे महाप्रसादकुं लेवेमें देवद्रव्यको बाध तो रहे ही है.

(ख) मन्दिरके स्थलके फेरबदलके बारेमें श्री गो.पू.१०८ श्रीबालकृष्णलालजीने कह्यो कि पुष्टिमार्गमें सार्वजनिक मन्दिरकी परम्परा नहीं है. यामें व्यक्तिगत स्वरूप—निजी स्वरूप की ही बात है; और याही कारण पुष्टिमार्गमें सेवाप्रकार देवालयके प्रकार जैसो नहीं है. मन्दिरको निर्माण भी घर जैसो होवे है. कहीं भी ध्वजा-शिखर नहीं होवे है. वैष्णव भी घरमें ही सेवा करे है तथा वाकुं 'मन्दिर' ही कहे है...

(क-'वैष्णववाणी' अंक ३,वर्ष मार्च १९८३. ख-'गुजरात समाचार' अंक २५-५-९३में प्रकाशित)

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको लीना पटेल, माणावदर के सादर प्रणाम

धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ...अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्धजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्धजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्धजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्धजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है. ...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें विराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें. ''बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु''.

(नि.ली.गो. श्रीबालकृष्णलालजी महोदय की पत्रद्वारा सम्मतिसे सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किया गया ''श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र'' १९८६.)

नि.ली.गो.श्रीकृष्णकुमार श्रीरमणलालजी
(कांदीवली-कामवन)

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ...अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्धजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्धजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्धजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्धजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है. ...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके

रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांतत: प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें. ''बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु''.

(गो.श्रीकृष्णकुमारजी की हस्ताक्षरित सम्मतिसे सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किया गया ''श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र'' १९८६.)

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोंसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिले तो ... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है कि वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह कृष्णसेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनों प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता. ...वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता(गोस्वामी-मुखिया-ट्रस्टी)को वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हों और भक्त हों ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११वां अपराध: अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते

श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल : एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६वां अपराध: श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल : सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पाने केलिये भी भजन(सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी ? ...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-सामाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके विना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंके लिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धन्तम नरकको पाने वाले सहज आसुरी जीव हैं.

(गो.श्रीकृष्णकुमारजी हस्ताक्षरित सम्मतिसे पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश)

पंचमगृहाधीश

नि.जी.गो.श्रीगिरिधरलालजी महाराज

(कामवन-विद्यानगर)

पुष्टिमार्गकी आज उपेक्षा होती जा रही है. उसकी परम्परा ही अब टूटती जा रही है. इसके मूलमें यदि कुछ है तो वह है आजकी साधन-सम्पत्ति. वही हमारे संस्कार बिगाड़ रही है. अभी भी जिस घरमें अलौकिक (प्रभु)सेवा होगी वहां पुष्टिमार्ग जरूर निभेगा.

(जुलाई,२००७ पृ.६)

श्रीमदाचार्यचरणके मतानुसार गृहसेवा और अपने माथे बिराजते ठाकुरजीका अति स्नेहसे जतन करना ही सच्चे संस्कारका मूल है. ...श्रीगुसांईजीके समयमें छप्पनभोग जैसे मनोरथोंकी शुरुआत करनेके समय(उनमें) केवल लौकिकता ही बढ़ेगी ऐसी स्पष्ट सूचना दी गयी थी. ...आजकल...मंदिरोंका उपयोग यश-कीर्ति प्राप्त करनेकेलिये होने लगा है. मंदिरोंमें प्राधान्य मनोरथीका होने लगा है. श्री(ठाकुरजी), गुरु तथा सेवाभावना का उपहास होने लगा है. जबसे मार्गीय सिद्धान्तोंका उपहास होने लगा है तबसे मंदिरकी उसके संचालकोंकी वृत्ति ही पलट गई है. आडंबर और यश को पुष्ट करनेकेलिये ...दर-दर भटकनेकी स्थिति पैदा हो गयी है. ...इन सबका सच्चा उपाय इस कलिकालमें अपने सन्तानोंको जरूरी संस्कार अपने घरसे ही दिये जायें ये ही है.

...मंदिरोंका सम्पूर्ण व्यापारीकरण होने लगा है. ...सम्पत्ति...प्राप्त करनेकी लालच बढ़नेसे प्रभु(स्वरूप-सेवा)को भी हम व्यापार स्वरूपमें परिवर्तित करने लगे हैं.(जुलाई-२००७ पृ.६)

ठाकुरजीकी सेवा चोरकी तरह करनी चाहिये. ...सेव्यस्वरूपका मैं सेवक हूं उसका ढिंढोरा पीटना या उसका प्रदर्शन करना वह भी जीवके दैन्यमें विक्षेप उत्पन्न कर सकता है. ...अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवामें भी इतनी गुप्तता जरूरी है. ''प्रीत हियेमें राखीये प्रकट किये रस जाय''की रीतिसे तुम्हारे प्राणप्रेष्ठ तुमको जिस रसकी प्राप्ति कराते हैं उसे कभी भी प्रकट नहीं किया जा सकता है.(सप्टेम्बर २००४ पृ.७)

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको पीयूष शाह, अमदावाद के सादर प्रणाम

आज तो श्रीनाथजी-नाथद्वारा, चंदबावा-कामवन और अन्य ठाकुरजीके दर्शन करते ही अपने माथे बिराजते ठाकुरजी भुला जाते हैं. पुष्टिमार्गमें तो 'श्रीजी'का अर्थ ही अपने माथे बिराजते ठाकुरजी होता है. लक्ष्मण बालाजीमें भी 'तिरुपति' शब्दका प्रयोग होता है जिसमें 'तिरु'का अर्थ श्री और 'पति'का अर्थ नाथ (यानि श्रीनाथ) ही होता है. अर्थात् अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीमें ही अपने सर्वस्वका दर्शन होना चहिये. उनको अरोगाया मतलब समस्त जगतको प्रसाद लिवा दिया ऐसा भाव सिद्ध होना चाहिये. यहां तो उससे उलटी गंगा बह रही है. अपने सेव्य ठाकुरजीमें सभी निधिस्वरूपोंके दर्शन होनेके बदले अब तो सबमें अरे, वहां तक कि जीवामात्रमें अपन अपने ठाकुरजीका दर्शन करनेका विचार कर रहे हैं! और फिर बुद्धिकी चतुराई भी वापर रहे हैं कि सभीमें ठाकुरजीका अंश है इसलिये घरमें प्रभुकी सेवा करें या अन्योंकी सेवा करें एक ही बात है!! अतः अन्यसेवामेंसे सन्तोष लेना शुरु किया. इससे शरीर, पैसा, कीर्ति सबकी रक्षा हो और ऊपरसे परम भगवदीय कहलाने लगें!!! (सप्टेम्बर, २००७ पृ.७)

(वैष्णवता-'सांचे बोल तिहारे', प्रकाशक : पं.पी.गो.श्रीवल्लभलालजी महाराज)

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोंमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज

परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ...अत: निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्धजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्धजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्धजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्धजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है. ...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांतत: प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें. ''बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु''.

(नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी पत्रद्वारा सम्मतिसे सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किया गया ''श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र'' १९८६.)

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोंसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिले तो ... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है कि वह वित्त देकर किसी

अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह कृष्णसेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनों प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता. ...वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता(गोस्वामी-मुखिया-ट्रस्टी)को वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हों और भक्त हों ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११वां अपराध: अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल : एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६वां अपराध: श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल : सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पाने केलिये भी भजन(सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी ? ...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-सामाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर

जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंकेलिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धन्तम नरकको पाने वाले सहज आसुरी जीव हैं.

(नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजीकी पत्रद्वारा सम्मतिसे पुष्टिसिद्धान्त चर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई 'सिद्धान्तवचनावली'के अमृत अंश)

नि.ली.गो.श्रीव्रजाधीशजी महाराज

(दहिसर-मुंबई)

(क) हम श्रीवल्लभाचार्यजीकी आज्ञाको पालन कहां कर रहे हैं? अपने यहां गृहसेवा कहां (रह गयी) है? केवल मन्दिरनमें दर्शनसूं क्या लाभ है? श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है ''कृष्णसेवा सदा कार्या''. यदि श्रीमहाप्रभुजी मन्दिरकुं मुख्य मानते तो अपनी तीन परिक्रमानमें अनेक मन्दिर स्थापित कर देते. श्रीगुसांईजीने श्रीगिरधरजीकुं सातस्वरूपके मनोरथ करते समय या प्रकारकी चेतावनी दी थी. मन्दिरस्थापन करते समय उनकुं डर हतो के घरमेंसूं ठाकुरजी मन्दिरमें पधार जायेंगे. मेरे पिताजीने कल (उपर्युद्धृत वचनमें) जो कह्यो वो अक्षरशः सत्य है. तुम अपने घरनमें ठाकुरजीकुं पधराओ और सेवा करो.

(ख)पुष्टिमार्गीय प्रणालिकाके अनुसार ट्रस्ट होनो उचित नहीं है.

श्रीआचार्यचरणने प्रत्येक ब्रह्मसम्बन्धी जीवकुं आज्ञा दी है ''गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः'' (भक्तिवर्धिनी) अर्थात् गृहमें रहके स्वधर्माचरण करनो चहिये. गोस्वामी बालक भी आचार्य होवेके बावजूद वैष्णव भी हैं. अतः आचार्यश्रीकी उपरोक्त आज्ञाकुं पालनो उनको भी कर्तव्य है...

अतः मेरो तो माननो यही है के आचार्यचरणके सिद्धान्तके अनुसार वैष्णवनकुं स्वयंके घरमें श्रीठाकुरजीकी सेवा करनी चहिये और धर्मग्रन्थनको पठन-पाठन करनो चहिये. नहीं के मन्दिरनमें जाके...ट्रस्ट तो पुष्टिमार्गीय प्रणालिकासूं संगत होवेवाली बात नहीं है प्रत्युत अपनी प्रणालीको भंग करवेवाली बात है.

(१७/ख-'वल्लभविज्ञान'. अंक ५-६ वर्ष १९६५, १७/ग-'नवप्रकाश' अंक ८ वर्ष ८)

नि.ली.गो.श्रीव्रजरायजी महाराज

(श्रीनटवरगोपालजी - अमदावाद)

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोंसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिले तो ... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है कि वह वित्त देकर किसी अन्यपुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह कृष्णसेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये.

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको चंद्रिका मांडलीया, मोरबी के सादर प्रणाम

ऐसे दोनों प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता. ...वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता (गोस्वामी-मुखिया-ट्रस्टी)को वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हों और भक्त हों ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११ वां अपराध : अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल : एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६ वां अपराध : श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल : सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पाने केलिये भी भजन(सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी ? ...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-सामाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय ता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धन्तम नरकको पाने वाले सहज आसुरी जीव हैं.

(गो.श्रीनटवरगोपालजीकी हस्ताक्षरित सम्मतिसे पुष्टिसिद्धान्त चर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश)

१. पुष्टिमार्गीय सेव्यस्वरूप पूर्णपुरुषोत्तम स्वरूपसों ही बिराजे हैं, वे स्वरूप पाछें चाहे गुरुके सेव्य होवें के शिष्य (वैष्णव)के सेव्य होवें. दोउ(स्वरूपन्)मेंतें कोउमें हु पुरुषोत्तमपनों न्यूनाधिक होत नाहीं.

२. पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त अनुसार कृष्णसेवा करिवेको स्थान गृह ही होइ सकत है, सार्वजनिक (स्थल) नाहीं.

३. पुष्टिमार्गीय भगवत्सेवाकु धनकी प्राप्तिको साधन बनानो नहीं चहिये.

४. देवलक (= भगवत्सेवाकु धनप्राप्तिको साधन अथवा आजीविकाको साधन बनायवेवारे) व्यक्तिकी सेवा निषिद्ध कक्षाकी होयवेसों (वो) सेवा करवे योग्य नाहीं है.

५. श्रीठाकुरजीके तांई काहु प्रकारके दान-भेंट मांगने अथवा स्वीकारने वो शास्त्रद्वारा निषिद्ध है. इतनो ही नाहीं परि लाभ-पूजाके हेतुसों अपने लिये द्रव्य अथवा काहु वस्तुको स्वीकारनो वो शास्त्रकी दृष्टिमें ऋणानुबन्धी दोषकों उत्पन्न करिवेवारो होयवेसों बन्धनकारी है.

६. पुष्टिमार्गके सिद्धान्तानुसार श्रीठाकुरजीकुं निवेदन करे पदार्थन्को ही समर्पण होइ सकत है अरु समर्पित पदार्थन्को ही भगवद् उच्छिष्टरूपमें प्रसाद लेइ सकत हैं. श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें आयी भयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें ली नहीं जा सके है क्योंके श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें प्राप्त भये पदार्थ (द्रव्य)सों आयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें पाछी लेवेसों 'दत्तापहार'को पाप लागत है.

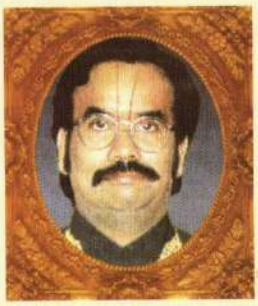

७. सेवा तो शास्त्रको विषय है. तासों सेवाके सम्बन्धमें शास्त्रसों – श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थन्सों ही सर्व निर्णय होइ सकत है, अन्य काहु प्रकारसों नाहीं.

(गो.श्रीनटवरगोपालजी एवं गो.श्रीव्रजेन्द्रकुमारजी की हस्ताक्षरित सम्मतिसे प्रकाशित हुवा ''संयुक्तघोषणा पत्र : अमदावाद'', मिति फाल्गुन सुदि ७, श्रीवल्लभाब्द ५१४, दि.११ मार्च १९९२)

नि.ली.गो.श्रीमाधवरायजी

(नासिक-मुंबई)

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ...अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग विना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्भजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्भजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्भजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्भजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है. ...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें विराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें. "बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु".

(गो.श्रीमाधवरायजी की हस्ताक्षरित सम्मतिसे सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किये गये "महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यवंशज गोस्वामीओंका संयुक्त-घोषणापत्र" १९८६)

सप्तमगृहाधीश
पू.पा.गो.श्रीघनश्यामलालजी
(कामवन)

क्योंकि श्रीनाथजी स्वयं वाके भोक्ता हैं किन्तु वैष्णव-वृन्द तथा सेवकगण भी वा महाप्रसाद लेवे तकके अधिकारी नहीं हैं. यह आचार्यचरणके इतिहाससूं प्रत्यक्ष प्रमाणभूत है. वाके महाप्रसाद लेवेको केवल गायकुं ही अधिकार है. अन्यथा वा देवद्रव्यके उपभोग करवेसूं निश्चय ही अधःपतन है... सब प्रकारके दान-चढ़ावा व वसूल वसूली करवेको उल्लेख कियो गयो है, वो भी सम्प्रदायके सिद्धान्तसूं नितान्त विरुद्ध है. अपने सम्प्रदायकी प्रणालीके अनुसार जो अपने सम्प्रदायके सेवक हैं, उनको ही द्रव्य गुरु-शिष्यके सम्बन्धसूं लेके सेवामें उपयोग करायो जा सके है. सम्प्रदायमें सब प्रकारके दान-चढ़ावान्को उपयोग सेवामें नहीं कियो जाय है; ओर कदाचित् कहीं कियो जातो होय तो वो सम्प्रदायके नियमन्सूं विरुद्ध होवेके कारण बन्द कर देनो चहिये.

("श्रीनाथद्वारा ठिकानेके प्रबन्धकी दिल्ली-योजनाकी आलोचना, ता.१-२-५६")

पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी महाराज
(जामनगर)

गो.श्रीहरिरायजी : जरा ध्यानसे सुनें ... ''तत्र अयम् अर्थः. लाभपूजार्थयत्नस्य उपधर्मत्व-देवलकत्वादि'' स्पष्ट सुनें, ''सम्पादकत्वात्''... लाभ-पूजार्थ यत्न करता है जो सेवा करके, जब वो लाभ-पूजार्थ प्रयत्न करता है तो वो उपधर्म हुवा; देवलकत्व आदि जो दोष हैं वो उसमें प्रविष्ट होंगे. ...

गो.श्रीश्याममनोहरजी : अर्थात् यह खास ध्यानमें रखना कि जिस स्वरूपकी भावप्रतिष्ठा की गयी हो उस स्वरूपकी भी लाभ अथवा पूजा केलिये यदि सेवा की जाती है तो सेवा करनावाला देवलक(पापी) बन रहा है...

गो.श्रीहरिरायजी : और उपधर्मत्व होता है... और ये निषिद्ध है. ...

गो.श्रीश्याममनोहरजी : इस स्थितिमें गुरु अपने लाभ अथवा पूजा केलिये शिष्यसे कुछ भी ठाकुरजीकेलिये मांगता है तो वह ... शास्त्रनिषिद्ध होनेसे ... दान होनेसे, देवद्रव होनेसे उपयोग करने योग्य नहीं होता है.

गो.श्रीहरिरायजी : हां. बिलकुल. ... ये तो बिलकुल स्पष्ट है. ... 'स्ववृत्तिवाद' से भी स्पष्ट होता है.

('पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा विस्तृत विवरण' पृष्ठ १६४, १९३)

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको संदीप रायचुरा, माणावदर के सादर प्रणाम

प्रथमगृहाधीश
गो.श्रीलालमणीजी महाराज
(कोटा-जतिपुरा-मुंबई)

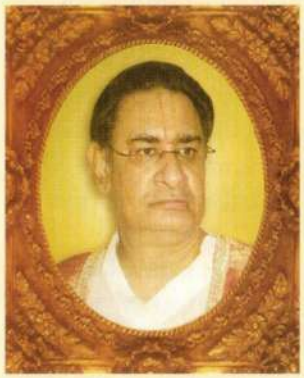

श्रीमहाप्रभुजीके चरणारविन्दकी कृपासे हमने वागीश श्रीश्यामुदादाकी वाणीसे श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तोंका अवगाहन नवरत्नके प्रकाशमें किया. इस प्रकाशमें हमने पुष्टिपथ पर चलनेका अनुकरणीय सिद्धान्त श्रीश्यामुदादासे सुना.

इस पुष्टिपथपर चलते-चलते कई चिन्ताओंका हमने निवारण किया और कई कुरुचिपूर्ण वेदनाओंसे हमने छुटकारा प्राप्त किया. परन्तु मैं अपनी बात कहूं तो उन चिन्ताओंसे छुटकारा पाते-पाते मुझे एक नयी चिन्ताका उदय हो गया और वो मैं हिंमत करके श्यामुदादासे कह ही दे रहा हूं कि जहां श्रीमहाप्रभु ''कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता'' उपदेशसे हमें देहेन्द्रिय-प्राणान्तःकरणके अध्यासोंसे छुटकारा देते हैं, वहीं हमने एक नये केंसरको कहां जन्म दे दिया ये हमारी समझमें नहीं आया! देहेन्द्रिय-प्राणान्तःकरणाध्याससे हम सेवा करते-करते छूटे ही नहीं थे कि मनोरथाध्यास, भगवत्प्रदर्शनाध्यास, प्रसादाध्यास, असत्संगाध्यास इन सब अध्यासोंने मिलकर हमें हमारे सिद्धान्तोंकी विस्मृति करादी. 'अध्यास'का मतलब यह होता है कि जो चीज जैसी है वैसी न दीखकर कुछ ओर दीखना.... तो मनोरथोंका हमें अध्यास हो गया. हम जिन्हें मनोरथ समझते थे आज तक...वो मनोरथ ही नहीं हैं, परन्तु कुछ ओर हैं जो हमें अहन्ता और ममता की ओर धकेल रहे हैं. जिन्हे आज तक हम प्रसाद समझ रहे थे और रूपयेसे खरीदते थे वो केवल घसीटारामकी हलवाईके लड्डु हैं, और कुछ नहीं. ...हम केवल

लड्डु ही खरीदके लाते हैं, पर उनमें हमें प्रसादका भ्रम हो गया है. ...जिन भगवद्दर्शनोंको हम हमारी अहन्ता-ममता निचोडकर भगवत्प्राप्तिकी ओर ले जानेवाले समझते थे वो व्यावसायिक प्रयोजनवश कराये जाते भगवद्दर्शन हमारे लिये अपसिद्धान्तका फंदा हैं...

'पूतना'का अर्थ श्रीमहाप्रभुजी सुबोधिनीजीमें करते हैं ''पूतं नयति इति पूतना'' जो पुत्रोंको ले जाये, हमारी पवित्र वस्तुओंको हमारे यहांसे ले जाये उसे हम 'पूतना' कहते हैं. तो यह जो लोकेषणा और वित्तैषणा रूपी पूतनाए हैं वो हमारे ''व्रज भयो महरिके पूत''को कब यहांसे उठाके ले गयी, हमने कब उसे धनलिप्साके तृणावर्तको सौंप दिया यह हमें पता ही नहीं चला.

मुझे दमलाकी वार्ता याद आ रही है. महाप्रभुजीने जब पूछा कि श्रीनाथजीकी आज्ञा तूने सुनी? तो दमलाने कहा ''सुनी पर समझी नहीं''. अगर हम भी ... श्यामुदादाकी आज्ञा सुनकर बाहर चले जायें कि ''सुनी पर समझी नहीं'' और फिर मनोरथाध्यास, प्रसादाध्यास और भगवत्प्रदर्शनाध्यास में लग जायें तो हम महाप्रभुजीकी निगाहोंमें गद्दार होंगे और महाप्रभुजीके वल्लभ पीनल कोडमें ''यदा बहिर्मुखा यूयं...सर्वथा भक्षयिष्यन्ति युष्मान्'' के अधिकारी होंगे और श्यामुदादाके शब्दोमें पतितताका हम पर चार्ज होगा.

...श्रीगुसांईजी एक बार हांसी-खेल कर रहे थे तो दमलाने टोक दिया जाकर अपनी पुष्टिप्रौढीसे कि ''महाराज, यह हांसी-खेलको मारग नाहीं, यहा ताप-क्लेशको मारग है. ...जिस दिन आपके भीतर दमला प्रकट होगा उस दिन हमारे भीतर महाप्रभुजी प्रकट होंगे. ...इसलिये यदि आप अगर बाहर जाकर यह कह दें कि ''सुना पर समझा नहीं'' तो आपमें दमलाका नहीं, पतितताका प्राकट्य है. आप इसे प्रकट करो, बाहर जाकर अपने गुरुसे कहो कि महाराज, यह हांसी-खेलको मारग नाहीं, मनोरथ और प्रदर्शनको मारग नाहीं, ये ''नीके राखि यशोदा रानी नारायण गृह आयो''को गुप्त रखनेका मार्ग है.

(गो.श्रीश्याम मनोहरजी द्वारा किये गये नवरत्नग्रन्थके प्रवचनका समापन वक्तव्य, दि.३१-०८-१९८४)

पू.पा.गो.श्रीमथुरेशवरजी महाराज

(बडौदा-सुरत)

(क) ...ब्रह्मसम्बन्ध लेके सेवा करवेसूं प्रत्येक इन्द्रियन्‌को भगवान्‌में विनियोग होवे है... मन्दिर-गुरुघर केवल उपदेशग्रहण करवेकेलिये हैं. सेवा अपनकुं अपने घरन्‌में करनी है.

('वल्लभविज्ञान'अंक ५-६ वर्ष १९६५)

(ख) आज बहुत घरोमें सेवा होती है, पर क्या हम विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि यह सेवा वास्तविक सेवा है? क्या आजकी सेवा ''चेतस्तत्प्रवणं सेवा'' (चित्तका प्रभुमें प्रवण हो जाना वह सेवा है) का अक्षरशः सार्थक स्वरूप है?

वस्तुतः हम खुद वल्लभवंशज गोस्वामी भी यह दावा नहीं ही कर सकते हैं कि आज हम वास्तविक सेवा कर रहे हैं. यह कहनेमें मुझको लेश मात्र भी संकोच नहीं हो रहा है, क्योंकि मैं दम्भका संरक्षण करना नहीं चाहता हूं. अतः स्पष्ट है कि यदि हम गोस्वामीओमें सेवाकी और श्रीमहाप्रभुजीद्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तोंके पूर्ण परिपालनकी क्षमता होगी तो ही हमारे अनुयायी स्वयं सेवा और सिद्धान्त के परिपालनमें सक्षम हो पायेंगे, अन्यथा नहीं. क्योंकि हम गोस्वामी और वैष्णव एक ही तत्त्वके दो प्रकार हैं. वल्लभकुल बिन्दुसृष्टि है तो वैष्णव नादसृष्टि है. इस स्थितिमें श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी प्रभुचरण द्वारा की गयी आज्ञा वल्लभकुल और वैष्णव दोनोंकेलिये परिपालनीय है.

(पुष्टिबोध भाग-१, पृ.२३, वि.सं.२०३४)

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको हर्षवदन शाह, बडोदरा के सादर प्रणाम

तृतीयगृहाधीश

पू.पा.गो.श्रीव्रजेशकुमारजी महाराज

(कांकरोली-वडोदरा)

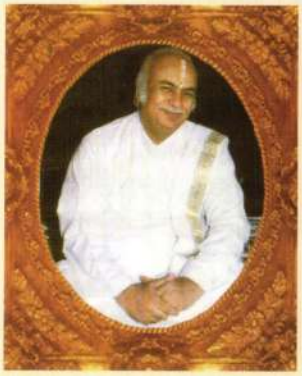

(क) प्रश्न : आज चल रहे जो डिस्प्युट् हैं वामें कितनेक सिद्धान्त चर्चित हो रहे हैं जैसे कि नये मन्दिर नहीं खोलने, ट्रस्ट मन्दिर नहीं बनाने, ठाकुरजीके नामपे द्रव्य नहीं लेनो, ठाकुरजीके दर्शन नहीं कराने, तथा बिना समजे-सोचे कोईकु ब्रह्मसम्बन्ध नहीं देनो. इन सब विषयमें आपको अभिमत क्या है?

उत्तर : देखो मन्दिरकी जहां तक स्थिति है तो ये बात सत्य है के पुष्टिमार्गीय प्रकारसुं मन्दिर तो मात्र एक ही है; ओर सब घरकी स्थिति हती. ...आज मन्दिर जितने हैं अथवा जिन स्थाननकुं अपन मन्दिर समझे हैं वो स्थान...वाकु अपन मर्यादापुष्टि मन्दिर कह सके हैं, पुष्टिमन्दिर नहीं. पुष्टिको प्रकार तो मात्र गृहसेवामें ही है.

('आचार्यश्रीवल्लभ', ऑगस्ट १९९४, अंक ५, पुष्टिमार्ग-वर्तमान प्रश्न-उत्तर ४, पृ.७)

(ख) आजसे डेढ़सो वर्ष पूर्व, श्रीमहाप्रभुजीके समयसे तब तक, पुष्टिमार्गमें कोई भगवन्मन्दिर खोलनेकी प्रणाली नहीं थी. प्रत्येक वैष्णवके घर-घर भगवत्सेवा हो उसका आग्रह रखा जाता था. वैष्णव अपने घरमें श्रीठाकुरजीके स्वरूपको सेव्य कराकर पधराकर गुरुघरकी प्रणालिका अनुसार सेवा करते थे.

(व्रज मोंहे बिसरत नाहीं, पृ.१४०-१४१)

(ग) खेतमें भरे हुवे जलको पी नहीं सकते. ...वो अनाज तो पैदा कर सकता है. वो अपने पेट भरनेका साधन मात्र करता है. वो किसी दूसरेके ओर

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको भानु गोर, हालोल के सादर प्रणाम

उपकारका नहीं होता है. ...अपना पेट पालनेकेलिये भगवद्गुणगान करते हैं वो उस प्रकारके होते हैं कि जैसे खेतमें भरा हुवा पानी होता है. पद्मनाभदासजी...आचार्यचरचणके निबन्धका श्लोक समझाने पर ही उन्होंने अपनी पौराणिक वृत्तिको छोड़ दिया! ...अपने मकानमें बरतन धोनेके पनाले हैं उसमें जो जल जाता है वो एक गढ्ढेमें इकठ्ठा हो जाता है. ...वो पानी तो केवल गंध ही मारता है... भगवद्भाव होते हुवे भी जिनके स्वभावमें दुःसंगके द्वारा दोष उत्पन्न हो जाता है ऐसे मनुष्य उस गंदे गढ्ढेके समान बन जाते हैं कि जिसमें पानी भरा हुवा तो होता है लेकिन वो पानी किसी उपयोगका नहीं होता. वो भरा हुवा पानी केवल दुर्गन्ध पैदा करता है. ...पांचवें (भगवद्गुणगान करके अपनी आजीविका चलानेवाले नीच वक्ताओंके भाव) गटरके समान दुर्गन्धयुक्त...अस्पृश्य होते हैं.

(जलभेद प्रवचन, वडोदरा)

पू.पा.गो.चि.श्रीवागीशकुमारजी

(वडोदरा-कांकरोली)

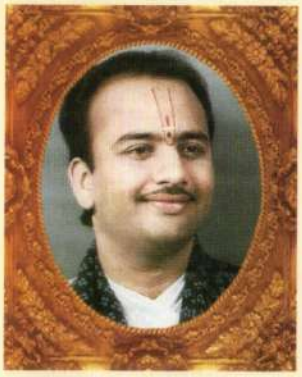

श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के दुनियामें भटकते रहेते अपने मन-चित्त (कुं) श्रीठाकुरजीके सङ्ग जोडिके विनकी तनु-वित्तजा सेवा करनी. तनुवित्तकी सेवा अर्थात् स्वयं उपार्जित अपने धनसों, अपने ही घरमें श्रीठाकुरजीकी अपने ही शरीरसों सेवा करनी सो.

('वल्लभीयचेतना', ऑक्टोबर १५)

(पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको कृष्णकुमार गांधी, कांदीवली के सादर प्रणाम)

द्वितीयगृहाधीश

पू.पा.गो.श्रीगोकुलोत्सवजी महाराज

(इन्दौर-नाथद्वारा)

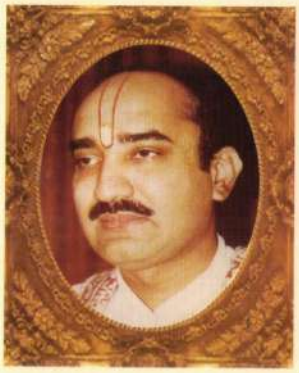

जो घरमें रहकर प्रभुकी सेवा करते हैं वे स्वयं तो कृतार्थ होते ही हैं किन्तु उनके परिवारके परिजन भी कृतार्थ होते हैं. ...सभी इन्द्रियसे अन्तःकरणसे भजनानन्दका अनुभव घरमें रहकर श्रीठाकुरजीकी सेवासे होता है. ...इसलिये घरमें आचार्य श्रीगुरुचरणसे पुष्ट करके श्रीठाकुरजी पधराओ और समयको सेवामय बनाओ. ...श्रीठाकुरजी घरमें बिराजते हैं तो घर घर नहीं रह जाता, वह प्रभुकी क्रीडाका स्थल बन जाता है...नन्दालयकी लीलाका स्थल बन जाता है.

...मुकुन्ददास...रामदास सांचोरा...किशोरीबाई...जीवनदास ...इन महानुभावोंने ...श्रीनाथजी तथा घरके श्रीठाकुरजीमें भेद नहीं समझा.

...श्रीठाकुरजी अपने निधि अर्थात् सर्वस्व हैं. ...ऐसे पूर्णपुरुषोत्तम श्रीनन्दराजकुमारको श्रीमहाप्रभुजीने हमारी गोदमें पधराकर हमें भाग्यशाली बनाया है. यह अलौकिक निधि(धन) देकर हमें धन्य बनाया है. इससे बड़ा दूसरा कौनसा फल है!

...जो सांसारिक कामनासे श्रीठाकुरजीका भजन अर्थात् दर्शन स्मरण सेवा करता है उसे क्लेश ही हाथ लगता है. ...घरके ठाकुरजी ही सर्वस्व हैं. ...वे ही नित्यलीलाके आनन्दका अनुभव कराएंगे. वे हमारे पति हैं जो भयसे रक्षा एवं सुरक्षा भी करते हैं.

क्या कोई स्त्री अन्य जगह जाकर किसीकी सेवा कर सकती है? कदापि नहीं. ...घरके परिजनोंको यह बर्दाश्त नहीं होगा. ...इसी तरह जो

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको राहुल शाह, वडोदरा के सादर प्रणाम

अपने माथे श्रीठाकुरजी घरमें बिराजते हैं उन्हें हम चाहे जैसे नये-नये पुष्टिमार्गीय मनोरथ करके सामग्री सिद्ध करके लाड़ लड़ा सकते हैं परन्तु यह अधिकार किसी दूसरे ठिकाने थोड़ी मिल सकता है. अतः ''घरके ठाकुरके सुत जायो नन्ददास तहां सब सुख पायो''.

श्रीनाथजीको भी देवालयकी लीला छोड़कर नन्दालयकी लीला करने हेतु श्रीगुसांईजीके घर पधारना पड़ा. ''व्याजं ललौकिकमाश्रित्य श्रीविट्ठलगृहेऽगमत्''. अतः श्रीनाथजीका यह पाटोत्सव ही मुख्य माना गया है जो फाल्गुन कृष्ण सप्तमीको आता है.

अतः घरके श्रीठाकुरजीका स्वरूप समझना बहुत आवश्यक है. कोई पत्नी अपने पतिकी सेवा न करे, उसके गुणगान ही करती रहे...तो क्या पति सन्तुष्ट होगा? इसी प्रकार ...जो कृष्ण-कृष्ण गुणगान करते रहते हैं, परन्तु सेवा स्वधर्मसे विमुख रहते हैं वे हरिके द्वेषी हैं (विष्णुपुराण). सेवासे सेव्यको सन्तोष मिलता है यही वैष्णवका स्वधर्म है.

(२५२ वैष्णव वार्ता, खंड-२ की भूमिका पृ.१५-३६)

पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी

(अमरेली-कांदीवली)

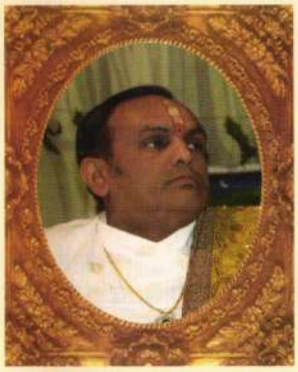

पुष्टिमार्ग गुप्त है, दिखावाकेलिये तो है ही नहीं, भक्त और भगवान् के बीच आन्तरिक सम्बन्ध दृढ करवेको मार्ग है... दोनोंके संबंध ऐसे होने चहिये कि कोई तीसरेकुं वाकी जानकारी न हो पाये. अपनो अपने भगवान्के साथ क्या सम्बन्ध है याकुं दूसरे कोई व्यक्तिकुं जतावेकी आवश्यकता ही क्या है? प्रशंसा पावेकुं? स्वयंकी महत्ता बढ़ावेकुं? ये तो सभी कुछ बाधक है.

(पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको पायल शाह, थाणा के सादर प्रणाम)

पू.पा.गो.श्रीद्रुमिलकुमारजी
(सुरत)

अपने सम्प्रदायमें इतनो अधिक सिद्धान्तवैपरीत्य हो गयो है कि गुजरातके एक गांवमें...अपने सम्प्रदायके ही दो मन्दिर हैं और मन्दिरन्‌की दीवार भी एक ही है; परन्तु...इतनो लोकार्थित्व समाजमें उत्पन्न हो गया है... सवेरो होते ही चन्द्रमाजीवाले वैष्णव बालकृष्णलालको जो मेवा होवे है वो चन्द्रमाजीमें ले जावे हैं और बालकृष्णजीवाले जो वैष्णव होवे हैं वो चन्द्रमाजीको जो मेवा और प्रसाद होवे है वाकु बालकृष्णलालजीमें ले आवे हैं! ऐसी जबरदस्त होंसातोंसी वैष्णवसमाजमें पैदा हो गई है के मानों एक-दूसरेके संग स्पर्धा करते होवें. ऐसो ईर्ष्या-द्वेषको वातावरण जब सेवाके क्षेत्रमें उत्पन्न हो जावे तो वासूं बढ़के लोकार्थित्व ओर क्या हो सके है! ... ऐसे सभी सिद्धान्तवैपरीत्यकी फज़ीहत यदि सर्वाधिक कहीं होती होय तो गुजरातमें होवे है. भागवतमें भी लिख्यो है के "गुर्जरे जीर्णतां गता:" भक्ति गुजरातमें आके बूढ़ी हो गई है. अन्धानुकरण बढ़ा हो तो वह गुजरातमें बढ़ा है. ... अत: सिद्धान्तकी सत्यनिष्ठा ... और श्रीमहाप्रभुजीके पुष्टिसिद्धान्तों के सद्‌जागरणकी कहीं आवश्यकता है तो... गुजरातमें.

("पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा, दि.१०-१३ जनवरी,९२. पार्ले-मुंबई, विस्तृतविवरण" पृ.३१७-३१८)

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोंसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्‌भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुन: पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको कामिनी शाह, भरूच के सादर प्रणाम

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिले तो ... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है कि वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह कृष्णसेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनों प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता. ...वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता(गोस्वामी-मुखिया-ट्रस्टी)को वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हों और भक्त हों ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...**११वां अपराध:** अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल: **एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है**. प्रायश्चित्त: श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...**३६वां अपराध:** श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल: **सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है**. प्रायश्चित्त: जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पाने केलिये भी भजन(सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी? ...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-सामाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंकेलिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धन्तम नरकको पाने वाले सहज आसुरी जीव हैं.

(पू.पा.गो.श्रीद्रुमिलकुमारजीकी सम्मतीसे पुष्टिसिद्धान्त चर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश)

पू.पा.गो.सुश्रीइन्दिरा बेटीजी
(वडोदरा)

श्रीमहाप्रभुजीने अलग-अलग मन्दिरनकी प्रणाली खड़ी नहीं करी; परन्तु यामें जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यकी एक दूरदृष्टि हती : प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय बननो चहिये... कोई मन्दिरके पड़ौसमें एक बहन रहे है. वाकुं मन्दिरकी आरतीके घंटानाद सुनाई पड़े हैं. सेवा करवेकुं बैठी भई वो बहन ठाकुरजीके वस्त्र बड़े करके स्नान करावे जा रही हती ऐसेमें आरतीके घंटानाद सुनाई दिये. वो ठाकुरजीकुं वहीं वाही अवस्थामें छोड़के मन्दिरकी तरफ दौड़ गई. थोड़ी देरके बाद लौटके घर आई. अब विचार करो कि या तरहसूं कोई सेवा करे तो वामें आनन्द कभी आ सके है क्या ? यहां तो प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय है. ('वैष्णवपरिवार'

नि.ली.गो.श्रीगोविन्दलालजी महाराज
पू.पा.गो.श्रीव्रजेशकुमारजी महाराज
पू.पा.गो.श्रीराजेशकुमारजी महाराज
पू.पा.गो.श्रीविजयकुमारजी महाराज
पू.पा.गो.श्रीवल्लभलालजी महाराज
(कडी-अमदावाद)

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि

हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ...अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको ज्योति शाह, कडी के सादर प्रणाम

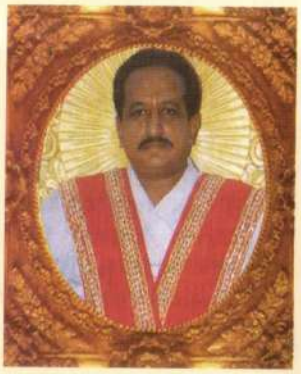

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्भजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्भजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्भजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्भजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है. ...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें. ''बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु''.

(नि.ली.गो.श्रीगोविन्दलालजी महाराज, गो.श्रीव्रजेशकुमारजी, गो.श्रीराजेशकुमारजी, गो.श्रीविजयकुमारजी तथा गो.श्रीवल्लभलालजी की हस्ताक्षरित सम्मतिसे सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किया गया ''श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र'' १९८६.)

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोंसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिले तो ... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको प्रियांक भट्ट, केनेडा के सादर प्रणाम

नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है कि वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह कृष्णसेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनों प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता. ...वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता (गोस्वामी-मुखिया-ट्रस्टी)को वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हों और भक्त हों ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११ वां अपराध : अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल : एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६ वां अपराध : श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल : सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पाने केलिये भी भजन(सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी ? ...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको मनन शाह, भरूच के सादर प्रणाम

वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-सामाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंकेलिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धन्तम नरकको पाने वाले सहज आसुरी जीव हैं.

(गो.श्रीव्रजेशकुमारजी, गो.श्रीराजेशकुमारजी तथा गो.श्रीविजयकुमारजीकी हस्ताक्षरित सम्मतिसे पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश)

आज फेरि वो समय आयो है. वासों हु कठिन समय आयो है. वा समय तो अन्यमार्गीय लोग मतनकुं प्रस्तुत करिके भ्रम उत्पन्न करत हते. परि आज तो अपने सम्प्रदायके ही 'सुजन' श्रीमहाप्रभुजीकी वाणीको विपरीत अर्थ करि रहे

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको राकेश राजपरा, यु.के. के सादर प्रणाम

हैं, लोगनकुं पथभ्रष्ट करि रहे हैं, दैवीजीवनके सङ्ग घोर अन्याय करि रहे हैं. तासों ही अभी महाप्रभु श्रीवल्लभाधीशके वंशज पुष्टिमार्गीय युवा आचार्यनें एक 'संवादस्थापकमण्डल'की स्थापना करीके मुम्बईमें ... चार दिवस पर्यन्त एक पुष्टिसिद्धान्त चर्चासभाको आयोजन कियो हतो. ... सभामें ३५ महानुभाव आचार्य उपस्थित हते. २८ गोस्वामी आचार्य महानुभावनने गो.श्रीश्याम मनोहरजी महाराश्री (किशनगढ-पालां) के 'सिद्धान्तवचनावली' के भावानुवादकुं सहमति दीनी हती. ... पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी व्रजभूषणलालजी महाराजश्री जामनगरवारेनने पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी महाराजश्रीके सङ्ग विनने करे भावानुवादके मुद्दानुपे चर्चा प्रारम्भ कीनी हती. ... समयके अभावके कारण चर्चा निर्णयपे पहुंच न सकी. परन्तु वर्तमान(में) कितनेक चर्चास्पद, संशयास्पद मुद्दानुकी स्पष्टता या चर्चामें प्राप्त भयी जो वस्तुतः एक बड़ी सिद्धि है. इतनो ही नहीं परन्तु नीचे बताये मुद्दानुके विश्लेषणमें पूज्य श्रीश्याम मनोहरजीके सङ्ग सहमत होयके पूज्य श्रीहरिरायजीने अपने सम्प्रदायकी उत्तम सेवा कीनी है:

१. पुष्टिमार्गीय सेव्यस्वरूप पूर्णपुरुषोत्तम स्वरूपसों ही बिराजे हैं, वे स्वरूप पाछें चाहे गुरुके सेव्य होवें के शिष्य (वैष्णव)के सेव्य होवें. दोउ(स्वरूपन्)मेंतें कोउमें हु पुरुषोत्तमपनों न्यूनाधिक होत नाहीं.

२. पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त अनुसार कृष्णसेवा करिवेको स्थान गृह ही होइ सकत है, सार्वजनिक (स्थल) नाहीं.

३. पुष्टिमार्गीय भगवत्सेवाकु धनकी प्राप्तिको साधन बनानो नहीं चहिये.

४. देवलक (= भगवत्सेवाकु धनप्राप्तिको साधन अथवा आजीविकाको साधन बनायवेवारे) व्यक्तिकी सेवा निषिद्ध कक्षाकी होयवेसों (वो) सेवा करवे योग्य नाहीं है.

५. श्रीठाकुरजीके तांई काहु प्रकारके दान-भेंट मांगने अथवा स्वीकारने वो शास्त्रद्वारा निषिद्ध है. इतनो ही नाहीं परि लाभ-पूजाके हेतुसों अपने लिये द्रव्य अथवा काहु वस्तुको स्वीकारनो वो शास्त्रकी दृष्टिमें ऋणानुबन्धी

दोषकों उत्पन्न करिवेवारो होयवेसों बन्धनकारी है.

६. पुष्टिमार्गके सिद्धान्तानुसार श्रीठाकुरजीकुं निवेदन करे पदार्थन्को ही समर्पण होइ सकत है अरु समर्पित पदार्थन्को ही भगवद् उच्छिष्टरूपमें प्रसाद लेइ सकत हैं. श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें आयी भयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें ली नहीं जा सके है क्योंके श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें प्राप्त भये पदार्थ (द्रव्य)सों आयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें पाछी लेवेसों 'दत्तापहार'को पाप लागत है.

७. सेवा तो शास्त्रको विषय है. तासों सेवाके सम्बन्धमें शास्त्रसों—श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थन्सों ही सर्व निर्णय होइ सकत है, अन्य काहु प्रकारसों नाहीं.

(गो.श्रीव्रजेशकुमारजी, गो.श्रीराजेशकुमारजी तथा गो.श्रीवल्लभलालजी की हस्ताक्षरित सम्मतिसे प्रकाशित हुवा "संयुक्तघोषणापत्र : अमदावाद", मिति फाल्गुन सुदि ७, श्रीवल्लभाब्द ५१४, दि.११ मार्च १९९२)

पू.पा.गो.चि.श्रीयोगेश्वरजी

(वडोदरा-मुक्त)

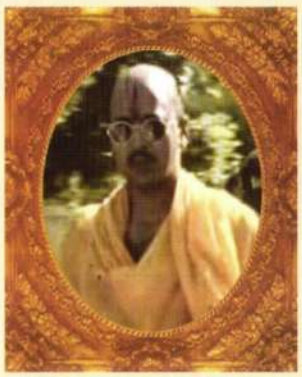

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि

हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको भरत शाह, राजपारडी के सादर प्रणाम

भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ...अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्धजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्धजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्धजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्धजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है. ...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें. "बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु".

(गो.श्रीयोगेश्वरजीकी हस्ताक्षरित सम्मतिसे सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किये गये "महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यवंशज गोस्वामीओंका संयुक्त-घोषणापत्र" १९८६)

पू.पा.गो.श्रीवल्लभरायजी महाराज
(सुरत)

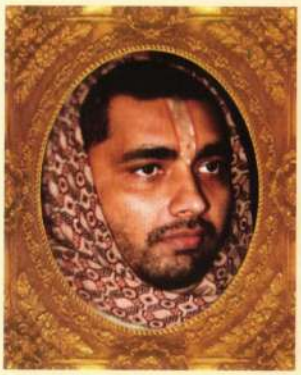

प्रश्न : अपने सम्प्रदायमें मन्दिरकुं 'मन्दिर' न कहके 'हवेली' क्यों कह्यो जावे है ?

उत्तर : सामान्यतया इतर हिन्दु-सम्प्रदायमें 'मन्दिर' शब्द देवालयके अर्थमें प्रयुक्त होवे है परन्तु ऐसे देवालयके रूपमें मन्दिर जैसी संस्थाको पुष्टिमार्गमें अस्तित्व ही नहीं है. क्योंकि पुष्टिमार्गमें अपने माथे जो प्रभु पधराये जावे हैं वे प्रभुस्वरूप और उनकी सेवा हरेकके व्यक्तिगतरूपमें वाकी भावनाके अनुसार पधराये जावे हैं. स्वयंके श्रीठाकुरजीकी सेवा पुष्टिमार्गीय जीवको एकमात्र स्वयंको कर्तव्य बन जातो स्वयंको ही धर्माचरण है. पुष्टिमार्गमें सेवा सामुहिक जीवनको विषय नहीं परन्तु व्यक्तिगत जीवनको विषय है. जेसे लोकमें पत्नी अथवा माता को पति अथवा पुत्र की सेवा या वात्सल्य प्रदान करवेको वाको व्यक्तिगत धर्म उत्तरदायित्व और अधिकार होवे है वा ही तरह जा सेवकके जो सेव्यस्वरूप होवे हैं वा सेव्यस्वरूपकी सेवा वाको व्यक्तिगत धर्म और अधिकार होवे है. सेवा कोई सार्वजनिक कार्य या सार्वजनिक प्रवृत्ति नहीं परन्तु सेवा तो स्वयंके आन्तरिक जीवनके साथ सम्बन्ध रखवेवाली बात होवेसूं स्वयंके जीवनकी स्वयंके घरमें की जावेवाली धर्मरूप प्रवृत्ति है... अतः इतर हवेलीनकी तरह जैसे 'श्रीनाथजीको मन्दिर' शब्द, रूढ़ हो गयो होवेसूं, प्रयोग कियो जावे है. वस्तुतः तो सामुहिक दर्शन या सेवा जहां की जाती होय ऐसे अन्यमार्गीय सार्वजनिक देवस्थान जैसो वो मन्दिर नहीं है.

('पुष्टिने शीतल छांयडे' पृ.सं.१५७-१५८)

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको नारायण मारडीया, सुरत के सादर प्रणाम

पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी महाराज
(पोरबंदर)

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ...अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्भजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्भजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्भजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको माया तन्ना, गोंडल के सादर प्रणाम

भगवद्भजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है. ...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें. ''बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु''.

(गो.श्रीहरिरायजी की हस्ताक्षरित सम्मतिसे सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किया गया ''श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र'' १९८६.)

पू.पा.गो.श्रीद्वारकेशलालजी महाराज

(कामवन-सुरत)

तनुजा सेवा और वित्तजा सेवा एक ही व्यक्ति करे तब कहीं जाकर वह मानसीको सिद्ध करती है. केवल तनुजा करली या केवल वित्तजा करली तो अहन्ता-ममता दूर नहीं होगी. ... कैसे ? मैं आपको एक उदाहरण देता हूं. ... जो घरसेवा करते हैं उनकेलिये तो को प्रश्न नहीं है. लेकिन यदि को वित्तजा सेवा करेगा तो समझ लीजीये कि

(पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको भरत शाह, उमरेठ के सादर प्रणाम)

उसने मन्दिरमें भेंट दी. मनोरथ किया. उसकी आप रसीद लेंगे. ... तब आप कहेंगे ''मैने सेवा लिखायी है''. आप कहते हैं ''मैने सेवा लिखायी है'' तब अहन्ता कहां दूर हु ? अब आप मेहताजीसे क्या मांगोगे ? ''ये मेरी रसीद है, मेरा प्रसाद लाओ''. तो देखीये, अहन्ता-ममतामें हम और बंध गये. तो ऐसी सेवा संसारको दूर नहीं करेगी, संसारमें बांधेगी. .... केवल यदि हम वित्तजा करते हैं तो हमारे अहंकारको बढाते हैं. और अहन्ता दूर न होगी, ममता दूर न होगी तो मानसी कैसे सिद्ध होगी ? क्योंकि सभी बन्धनका मूल अहन्ता-ममता ही है.

(सिद्धान्तमुक्तावली प्रवचन, भरूच, जनवरी २००५)

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोंसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिले तो ... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है कि वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह कृष्णसेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनों प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता. ...वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता(गोस्वामी-मुखिया-ट्रस्टी)को वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हों और भक्त हों ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११वां अपराध: अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल : एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है.

प्रायश्चित्त : श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६ वां अपराध : श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल : सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पाने केलिये भी भजन(सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी ? ...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-सामाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंके लिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धन्तम नरकको पाने वाले सहज आसुरी जीव हैं.

(गो.श्रीद्वारकेशलालजीकी सम्मतिसे पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश)

पू.पा.गो.श्रीनवनीतलालजी महाराज

(भावनगर-कामवन)

(क)कई बार प्रभु सामग्रीपर मात्र दृष्टि करते हैं, उसे अरोगते नहीं हैं. जिस प्रसादको लेनेका आमन्त्रण पहले ही दे दिया गया हो उसे... वैष्णवोंको पहलेसे निमन्त्रण भेजा जाता है...यह बात ठीक नहीं है. (आश्रय, मार्च २००५, पृ.१२)

(ख)श्रीमहाप्रभुजीकी स्पष्ट आज्ञा है कि प्रत्येक वैष्णवका मुख्य कर्तव्य प्रभुसेवा है. अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवा करना ही वैष्णवका परम धर्म है... "हम घरमें सेवा नहीं कर सकते, नित्य पाठादि भी नहीं हो पाते हैं इसलिये नियमित मन्दिरमें दर्शन कर आते हैं" यह तो मन मनानेकी बात है. यह विचार ठीक नहीं है. सेवा नित्यनियम अवश्य करने चाहिये. सेवाका विकल्प बन्दिर जाना नहीं हो सकता.

(आश्रय, फेब्रुआरी २००५, पृ.१२)

(ग) कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोंसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये. ...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिले तो ... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है कि वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह कृष्णसेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनों प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता. ...वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता(गोस्वामी-मुखिया-ट्रस्टी)को वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा

की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हों और भक्त हों ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११ वां अपराध : अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल : एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६ वां अपराध : श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल : सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पाने केलिये भी भजन(सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी ? ...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-सामाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंकेलिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धन्तम नरकको पाने वाले सहज आसुरी जीव हैं.

(गो.श्रीनवनीतलालजीकी सम्मतिसे पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश)

पंचमगृहाधीश

पू.पा.गो.श्रीवल्लभलालजी महाराज

(श्रीविकिबावा - कामवन-वल्लभविद्यानगर)

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोंसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिले तो ... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है कि वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह कृष्णसेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनों प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता. ...वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता(गोस्वामी-मुखिया-ट्रस्टी)को वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको रासेश शाह, अंकलेश्वर के सादर प्रणाम

...जो अपने स्वजन हों और भक्त हों ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११ वां अपराध : अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल : एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६ वां अपराध : श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल : सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पाने केलिये भी भजन(सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी ? ...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-सामाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ भागवतका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंकेलिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धन्तम नरकको पाने वाले सहज आसुरी जीव हैं.

(गो.श्रीवल्लभलालजीकी हस्ताक्षरित सम्मतिसे पुष्टिसिद्धान्त चर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश)

पू.पा.गो.श्रीरमेशकुमारजी महाराज
(मुंबई)

पू.पा.गो.श्रीनीरजकुमारजी महाराज
(मुंबई-वापी-हैदराबाद)

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ...अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य

क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्भजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्भजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्भजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्भजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है.

...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें.

... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें. "बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु".

(गो.श्रीरमेशकुमारजीकी तथा गो.श्रीनीरजकुमारजी हस्ताक्षरित सम्मतिसे सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किया गया "श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र" १९८६.)

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको सुधीर शेठ, वापी के सादर प्रणाम

पू.पा.गो.श्रीमाधवरायजी महाराज

(वेरावल)

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोंसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिले तो ... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है कि वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह कृष्णसेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनों प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता. ...वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता(गोस्वामी-मुखिया-ट्रस्टी)को वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हों और भक्त हों ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको कैलाश लक्ष्मीदास मकवाणा, डुमरा के सादर प्रणाम

...११वां अपराध: अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें विराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल: एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त: श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६वां अपराध: श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल: सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त: जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पाने के लिये भी भजन (सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी ? ...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-सामाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं करसकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेके लिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंके लिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्तके वल अन्धन्तमनरकको पानेवाले सहज आसुरीजीवहैं.

(गो.श्रीमाधवरायजीकी हस्ताक्षरित सम्मतिसे पुष्टिसिद्धान्त चर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत कीगई सिद्धान्तवचनावलीके अंश)

पू.पा.गो.श्रीशरद्कुमारजी श्रीमुरलीधरजी
पू.पा.गो.श्रीचन्द्रगोपालजी श्रीमुरलीधरजी
(वेरावल-पोरबंदर)

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ...अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुघरको लक्ष्मीदास मकवाणा, डुमरा के सादर प्रणाम

परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्भजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्भजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्भजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्भजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है. ...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें. ''बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु''.

(गो.श्रीशीलूबावा तथा गो.श्रीचंदुबावाकी हस्ताक्षरित सम्मतिसे सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किया गया ''श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र'' १९८६.)

पू.पा.गो.श्रीअजयकुमारजी महाराज
(मद्रास-पूना)

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ...अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्भजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्भजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्भजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्भजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है. ... सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके

रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें. ''बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु''.

(गो.श्रीअजयकुमारजीकी हस्ताक्षरित सम्मतिसे सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किया गया ''श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र'' १९८६.)

षष्ठगृहाधीश

पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी महोदय

(वडोदरा)

चित्त भगवत्प्रेममें परिपूर्ण होइ जाय, पूर्णतः भगवान्में लगि जाय, तन्मय अरु तल्लीन होइ जाय है तब परासेवा होत है. याकों मानसी सेवा कहो जाय है. याके सङ्ग मनुष्यकों शरीरसों हु सेवा करनी चहिये. ... तनुजा सेवासों शरीरकी शुद्धि होत है. अहन्ता-अहंपनेंको नाश होत है. धनसों करी जाती सेवा 'वित्तजा'सेवा है. वासों ममता-मेरोपेनेंको नाश होत है. अहन्ता अरु ममता एक-दूसरेके सङ्ग जुडे भये रहत हैं तासों तनुजा अरु वित्तजा सेवा एकसङ्ग करनी चहिये. यामें प्रधानता तनुजा सेवाकी है. केवल धन दे देवेसों सेवा होत नाहीं है. वासों तो (चित्तमें)राजसी वृत्ति होत है.

(श्रीमद्भगवद्गीता पुष्टिदर्शन, पृ.१२५)

पुष्टिमार्गमें आ जाने पर भी अपसिद्धान्तके प्रवाहमें बहे जाते मेरे जैसे पामर जीवको ऐसे शुद्ध सिद्धान्तोंको समझाकर पुनः पुष्टिपथपर आरूढ करनेवाले पूज्य गुरुदेवको स्मित शाह, हालोल के सादर प्रणाम

पू.पा.गो.श्रीश्यामसुंदरजी महाराज
पू.पा.गो.श्रीव्रजप्रियजी महाराज

(बोरीवली)

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ...अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्धजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्धजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्धजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्धजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है. ...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा

स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें. ''बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु''.

(गो.श्रीश्यामसुंदरजी तथा गो.श्रीव्रजप्रियजी की हस्ताक्षरित सम्मतिसे सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किया गया ''श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र'' १९८६.)

पू.पा.गो.श्रीरसिकरायजी महाराज

(पोरबंदर-उपलेटा)

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोंसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिले तो ... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है कि वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह कृष्णसेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनों प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता. ...वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता(गोस्वामी-मुखिया-

ट्रस्टी)को वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हों और भक्त हों ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११वां अपराध: अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल: एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त: श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६वां अपराध: श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल: सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त: जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पाने केलिये भी भजन(सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी ? ...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-सामाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है. ...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंकेलिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धन्तम नरकको पाने वाले सहज आसुरी जीव हैं.

(गो.श्रीरसिकरायजीकी हस्ताक्षरित सम्मतिसे पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश)

पू.पा.गो.चि.श्रीपुरुषोत्तमलालजी
(जुनागढ)

(क) ''श्रीमहाप्रभुजी वल्लभाचार्यजीके पुष्टिसम्प्रदायमें दो दीक्षाएं दी जाती हैं. दोनों दीक्षाओंका प्रयोजन और तत्पश्चात् कर्तव्य का भी विचार बहुत आवश्यक है. केवल शिष्यैषणासे प्रेरित होकर शिष्य बनानेकेलिये दी जाती दीक्षासे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है. जो भगवत्सेवा करनेकेलिये तैयार नहीं है उसको कदापि ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा लेनी नहीं चाहिये. परन्तु श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तोंमें यदि निष्ठावान् है तो उसे केवल नामदीक्षा लेनी चाहिये और अनन्याश्रयका त्याग करके श्रीकृष्णका आश्रय दृढ करनेकेलिये प्रयत्नशील होकर नामसेवारत रहना चाहिये. परन्तु ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा लेनेके बाद श्रीकृष्णकी सेवा करना अनिवार्य है.

श्रीकृष्णकी सेवा भी श्रीमहाप्रभुजीद्वारा दिखलाई गयी रीतिके अनुसार ही हो सकती है. अपने घरमें अपने परिवारके सदस्योंके साथ अपने ही द्रव्यसे भगवत्सेवा करनी चाहिये. किसीको द्रव्य देकर अथवा किसीसे द्रव्य लेकर की जाती सेवा वह भगवत्सेवा तो कदापि नहीं ही है परन्तु श्रीमहाप्रभुजीका द्रोह होनेसे गुरु-अपराधसे ग्रसित बनाकर आरूढपतित बनाती है और इस भक्तिमार्गसे भ्रष्ट करती है. आजीविका चलानेकेलिये की जाती व्यावसायिक सेवासे तो चांडालके समान हीन देवलक बन जाते हैं. अतः भगवत्सेवा अपने घरमें अपने द्रव्य और तनसे ही की जा सकती है.

सेवाकी ही तरह भगवत्कथा-कीर्तन भी स्वयं अथवा निष्काम भगवदीयोंके साथ करने चाहिये. व्यावसायिक कथाकारोंको द्रव्य-दक्षिणा देकर करायी जाती कथा राखमें घी होमनेके तुल्य है. ऐसी कथा, पारायण, कीर्तन अथवा सप्ताह पिष्यिमार्गीय सिद्धान्तसे सर्वथा विरुद्ध हैं. अतः सेवा और कथा दोनों द्रव्य देकर अथवा लेकर करनेसे किसी भी तरहके अलौकिक पुष्टिफलकी प्राप्ति स्वप्नमें भी नहीं हो सकती है. हां, बहिर्मुख अवश्य होते हैं.

(ख)''अमे तो राजना खासा खवास मुक्ति मन न आवे रे'' व्रजाधिपका सेवन करनेवाले हम मुक्ति नहीं मांगते हैं. फिर भी पुष्टिमार्गी वैष्णव भागवत सप्ताह बैठाकर अपने पितृओंको मोक्षके मार्गपर भेजते हैं! पितृमोक्षार्थ भागवत सप्ताह!

को एकसो आठ! को एक हजार आठ! ...अपने पितृ तो गोलोकमें जाते हैं! उनको वापिस मोक्षमें क्यों भेजते हो? ...भागवत सप्ताह पूरी हो जानेके बाद माला पहेरामणी (सौराष्ट्रकी एक वैष्णव परम्परा) की जाती है और कहते हैं कि अब गोलोक धाम ...अब गोलोक धाममें भेजना है! मतलब यह हुवा कि पितृओंको यहां से वहां सिर्फ धक्के हि खिलवाने हैं! हमारा कोई ध्येय ही निश्चित नहीं है!! हमने श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थोंको खोला नहीं है उसका यह दुष्परिणाम है कि जिसे हमारे पूर्वजोंको भुगतना पड़ रहा है.

(श्रीयमुनाष्टक प्रवचन, राजकोट, २००६)

पू.पा.गो.श्रीयोगेशकुमारजी महाराज
(मुंबई)

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ...अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्भजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्भजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्भजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्भजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है. ...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें. ''बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु''.

(गो. श्रीयोगेशकुमारजीकी हस्ताक्षरित सम्मतिसे सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किया गया ''श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र'' १९८६.)

पू.पा.गो.श्रीगोपिकालंकारजी
(माणावदर-राजकोट)

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोंसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिले तो ... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है कि वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह कृष्णसेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनों प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता. ...वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता(गोस्वामी-मुखिया-ट्रस्टी)को वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामूल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हों और भक्त हों ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११वां अपराध: अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते

श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल : एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६ वां अपराध : श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल : सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त : जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पाने केलिये भी भजन(सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी ? ...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-सामाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है. ...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंकेलिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धन्तम नरकको पाने वाले सहज आसुरी जीव हैं.

(पू.पा.गो.श्रीगोपिकालंकारजीकी हस्ताक्षरित सम्मतिसे पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश)

संयुक्त घोषणापत्रपर मूल हस्ताक्षरोंकी फोटो कोपी

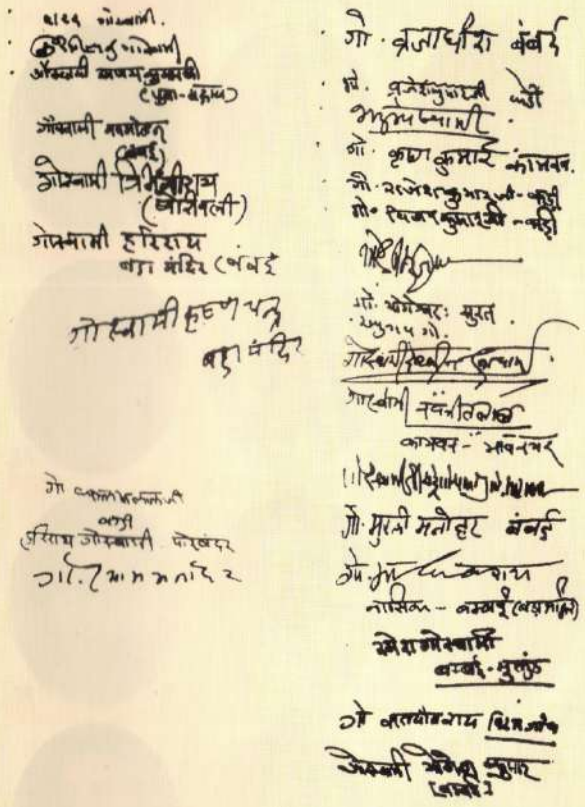

पत्रद्वारा प्राप्त सहमतिके हस्ताक्षरोंमें इन्हें ओर लेना चाहिए :
गोस्वामी श्रीमधुरेशजी-श्रीव्रजेशजी (वीरमगाम)

सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किये गये
''श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र''
पर हस्ताक्षर करने वाले गोस्वामी आचार्य

१

२

३

४

५

६

७

८

९

१०

११

१२

सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किये गये
''श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र''
पर हस्ताक्षर करने वाले गोस्वामी आचार्य

१३

१४

१५

१६

१७

१८

१९

२०

२१

२२

२३

२४

सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किये गये
"श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र"
पर हस्ताक्षर करने वाले गोस्वामी आचार्य

२५

२६

२७

गो.श्रीविट्ठलनाथजी

गो.श्रीहरिरायजी

गो.श्रीव्रजरत्नजी

नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज
एवं आपके सभी नि. बालक :
गो.श्रीविट्ठलनाथजी, गो.श्रीहरिरायजी, गो.श्रीश्याममनोहरजी,
गो.श्रीव्रजरत्नजी, गो.श्रीनवनीतरायजी तथा गो.श्रीबालकृष्णजी

गो.श्रीश्याममनोहरजी

गो.श्रीनवनीतरायजी

गो.श्रीबालकृष्णजी

३५

३६

३७

३८

३९

४०

सुप्रिमकोर्टमें प्रस्तुत करनेकेलिये तैयार किये गये
"श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशज गोस्वामीओंका संयुक्त घोषणापत्र"
पर हस्ताक्षर करने वाले गोस्वामी आचार्य

४१

४२

४३

१. गो. शरद्कुमारजी श्रीअनिरुद्धजी (मांडवी-हालोल)
२. गो. किशोरचन्द्रजी (मांडवी-जुनागढ)
३. गो. अजयकुमारजी श्रीश्यामसुंदरजी (मद्रास)
४. गो. मनमोहनजी श्रीनृत्यगोपालजी (मुंबई)
५. गो. श्यामसुन्दरजी मुरलीधरजी (बोरीवली)
६. नि.ली.गो.श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीकृष्णजीवनजी (मुंबई)
७. गो. वल्लभलालजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
८. गो. हरिराय श्रीगोविंदरायजी (पोरबंदर)
९. नि.ली.गो.श्रीव्रजाधीषजी श्रीकृष्णजीवनजी (दहिसर)
१०. गो. श्याम मनोहरजी श्रीदीक्षितजी (किशनगढ-मुंबई)
११. गो. व्रजेशकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
१२. नि.ली.गो.श्रीकृष्णकुमारजी श्रीरमणलालजी (कांदीवली-कामा)
१३. गो. राजेशकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
१४. गो. विजयकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
१५. गो. योगेश्वरजी श्रीमथुरेश्वरजी (वडोदरा-सुरत)
१६. गो. रघुनाथलालजी श्रीरमणलालजी (कामवन-गोकुल-पार्ला)
१७. गो. देवकीनन्दनाचार्य (गोकुल-अमदावाद)
१८. गो. नवनीतलालजी श्रीगोविंदलालजी (कामवन-भावनगर)
१९. गो. चन्द्रगोपालजी (चंदुबावा) श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)

२०. गो. मुरलीमनोहरजी श्रीव्रजाधीशजी (दहिसर)
२१. नि.ली.गो.श्रीमाधवरायजी श्रीगोकुलनाथजी (मुंबई-नासिक)
२२. गो. रमेशकुमारजी श्रीगोपीनाथजी (मुलुंड-नासिक)
२३. गो. कल्याणरायजी (कन्हैयाबावा) (वीरमगाम-अमदावाद)
२४. गो. योगेशकुमारजी शिशुकुमारजी (मुंबई)
२५. गो. व्रजप्रियजी श्रीमुरलीधरजी (बोरीवली)
२६. गो.व्रजेशकुमारजी (वीरमगाम-अमदावाद)
२७. गो.अनिरुद्धलालजी श्रीद्वारकेशलालजी (मांडवी-हालोल)
२८. नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज (जामनगर)
२९. गो.विट्ठलनाथजी श्रीव्रजभूषणलालजी (चापासेनी-जूनागढ)
३०. गो.हरिरायजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जामनगर)
३१. गो. श्याम मनोहरजी श्रीव्रजभूषणलालजी (काशी)
३२. गो.व्रजरत्नजी श्रीव्रजभूषणलालजी (नडीयाद-जामनगर)
३३. गो.नवनीतलालजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जूनागढ-जामनगर)
३४. गो.बालकृष्णजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जेतपुर-जामनगर)
३५. गो.नीरजकुमारजी श्रीमाधवरायजी (मुंबई-नासिक)
३६. गो.मधुसूदनजी श्रीकृष्णचन्द्रजी (चेन्नई)
३७. नि.ली.गो.श्रीमथुरेशजी (वीरमगाम-अमदावाद)
३८. नि.ली.गो.श्रीनृत्यगोपालजी श्रीकृष्णजीवनजी (मुंबई)
३९. गो.शरदकुमारजी (शीलूबावा) श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)
४०. नि.ली.गो.श्रीबालकृष्णलालजी श्रीगोविंदरायजी (सुरत)
४१. नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी (कामवन-वल्लभविद्यानगर)
४२. नि.ली.गो.श्रीगोविंदलालजी (कोटा)
४३. गो. हरिरायजी श्रीकृष्णजीवनजी (मुंबई)

गोस्वामी श्री गोविंदलालजी महाराज

382715 | 34/3114 | 324006

576451 | 110005

16.11.1986

समादरणीय श्री श्याम मनोहरजी,

आपका दिनांक अक्तूबर २३, १९८६ का साइक्लोस्टाइल्ड पत्र अन्य विवरणों के साथ प्राप्त हुआ। आपको विदित ही है कि हमारा स्वास्थ्य जरा नरम रहता है। इस कारण से हमारे बाबा आपके पास उपस्थित हुए थे तथा आपकी विचारधारा से हमारी ओर से एवं अपनी उनकी ओर से सहमत हुए थे।

फिर भी इसपत्र द्वारा हम अपनी ओर से आपके सम्प्रदाय विषयक इस कार्य की प्रसंशा करते हैं तथा सहमति प्रदान करते हैं।

इस कार्य की प्रगति आप हमें सूचित करते रहेंगे ऐसी आशा है।

विजयते श्री श्याम मनोहरः प्रभुः ॥ विजयते श्री मदनमोहनः प्रभु ।

गोस्वामी श्री व्रजभूषणलालजी महाराजश्री

(चौपासनी)

जामनगर फोन नं. २३१२ — जोधपुर (राजस्थान) फोन नं. २१२३०

मोटी हवेली, — दाऊजी मंदिर

जामनगर — → जोधपुर ७-११-८६

स्वस्ति श्रीमत्सु आदरणीय चि. श्याममनोहरजी
महोदयेषु गो. व्रजभूषणस्य शुभाशिषः व. विदित
परस्पर प्रसाद।

आपका पत्र दिनांक २३-१०-८६ का लिखा
मिला। तथा सुप्रीममें दीवानीवाली याचिका [illegible]
श्रीस्वामीजीराज संयुक्त घोषणापत्र (प्राप्त हुआ)।
दि. २६-१० को मैंने पत्र लिखा था उसमें [illegible]
ऐसा हमारा इसमें पूरा सहयोग होगा। तन मन धन
से जो भी आपको चाहिए वह सुरेन्द्र लिखें [illegible]
और चौपासनी मंदिर है। सुप्रीममें याचिका नहीं
होगी साथ जजोंकी बेन्च बैठनेवाली है आदि।
कृपया विवरणात्मक पत्र लिखें ताकि समी-
चीन सहयोग हो सके। हमारे सभी गो. बालक
इस कार्य में सहयोग करनेको तैयार हैं और
रहे सुरक्षित हैं। प्रत्युत्तर शीघ्र लिखें।

आशीर्वाद गो. व्रजभूषणलाल

विजयते श्री श्याम मनोहरः प्रभु ॥ विजयते श्री मदनमोहनः प्रभु ।

गोस्वामी श्री व्रजभूषणलालजी महाराजश्री

(चौपासनी)

जामनगर फोन नं. [illegible] — जोधपुर (राजस्थान) फोन नं. २१२३०

मोटी हवेली. — दाऊजी मंदिर

जामनगर — → जोधपुर २६-१०-८६

स्वस्ति श्रीमत्सु चि. श्यामबाबा — गो. व्रजभूषण
स्य शुभाशिषः — [illegible]

आपको जूनागढ़ केस सुप्रीमकोर्ट [illegible]
मिल्यो। मैं दि. २३-९-८६ से २२-१०-८६ तक
कलकत्ता हतो — २४-१० [illegible]
[illegible]
सब हिस्सो बांचने में आई [illegible]
प्रथम [illegible] जरा कुछ बात [illegible] अब
क्या याचिका पुनः हो सकती है! यदि हो सकती
हो तो मेरे जो [illegible] आप खुलासावार
लिखें। [illegible] सब करें। अन्यथा गोस्वामी
महानुभावों [illegible] चाहिए [illegible]
पर वहां [illegible] स्वरूप से विचार कियाही
होगा। इस कार्य में सबों का सहयोग होना
अत्यावश्यक है। यदि मीटिंग रखनी कुछ
होय तो निर्णय लेना होतो मैं बम्बई आ सकता हूं

उपमा विवरण मिल सब बातों से अवगत

हुआ। मुझे दिल्ली में दाऊजी मिले थे और

श्री बच्चू भाई ने आपके परिश्रम की बात

कही — अति धन्यवाद है कि जो आपने

इतनी मेहनत करके संप्रदाय के सिद्धान्तनकू

ओट में समझाये। और सब कुशल वारी

प्रत्युत्तर जोधपुर ही लिखें और भाई जो

मे बात करनी होता नंबर दे देंगे

जैसा उचित समझें। चरण भेट वाले

फैसला आपने जेसे मेंटी हु आटे न?

चि. हरिरायजी
सिवाय सब बालक
यहाँ हैं नमस्कार।

शुभेच्छु
श्री० कृ० बेळ

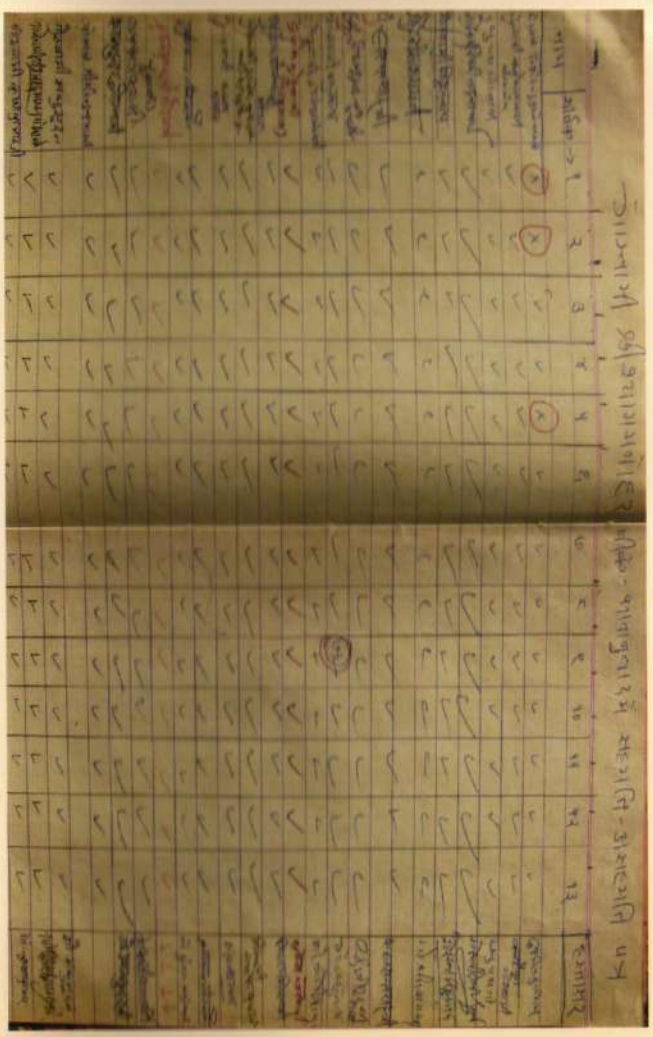

सेवायां स्पृहयालवो यदि भवेत् वित्तप्रदा सा तदा
सिद्धान्तोक्तिविभावनासु सुतरां व्याजेन निद्रालयः।
श्रीनाथे निजसद्मनि स्थितिपरे श्रद्धालवो वै श्रियां
सन्मार्गात् पतयालवः शृणुत सद्याचः कदा वाक्पतेः॥